चौधरी चरणसिंह: एक जातक

□ केदारनाथ मेहरोत्रा, एडवोकेट

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।
न भुक्ते क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ॥"

शुभ-अशुभ-कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है । बिना भोगे करोड़ों कल्प तक किया हुआ कर्म क्षीण नहीं होता । इसी कारण तुलसी ने कहा है कि 'कर्म-प्रधान विश्व रचि राखा', परन्तु इतना सहज लगने वाला कर्म भी समझा नहीं जा सकता, क्योंकि 'गहनोकर्मणःगति' अर्थात् कर्म की गति कठिन है । यह इसलिए कि इसी कर्म के आवरण से ढक कर निराकार विराट् आत्मा ने साकार-जगत को समर्पण-सा किया प्रतीत होता है और इस विराट् को 'परं ब्रह्म' से 'अहं ब्रह्म' बनना पड़ जाता है । बस इसी बिन्दु से भचक्र व कालचक्र जन्म लेता है और फिर जीवात्मा, जो कर्म के आवरण से ढका है, उसका नियन्त्रण प्रारब्ध व सचित कर्म के माध्यम से उतना अधिक ग्रहों के आधीन कर देता है कि क्रियमाण कर्म कभी-कभी गौंण से प्रतीत होने लगते हैं। बस यहीं से नवग्रह, द्वादश राशि व सत्ताइस नक्षत्र जो विराट् काल-पुरुष का प्रत्यक्ष स्वरूप है, हमारे जीवन का नियन्त्रण करने में समर्थ होते हैं। प्रत्येक प्राणी ज्ञान एवं विज्ञान दोनों के ही द्वारा कहीं न कहीं इनके प्रभाव से नियन्त्रित है। प्रायः यह सर्वमान्य है । यदि किसी को अमान्य है, तो उसकी नकारात्मक मान्यता तो वह देता ही है । बस यहीं 'या पिंडे स ब्रह्माण्डे' को सापेक्ष करता है । यह पिंड या प्राणी 'आत्म द्रष्टाः त्वमेवाहम्', परन्तु देह-दृष्टा कुछ भी हो सकता है ।

इसी कालचक्र में एक जातक ने दिनाँक २३ दिसम्बर सन् १९०२ को धनु लग्न में जन्म लिया, जो आज चौधरी चरणसिंह जी के नाम से हमारे देश के गृहमन्त्री हैं। इस विवादास्पद व्यक्तित्व का अध्ययन उपरोक्त कालचक्र के प्रत्यक्ष स्वरूप ग्रहों के जन्म-चक्र के आधार पर करने से वास्तविकता जानी जा सकती है, क्योंकि एक ही समुद्र में समाहित गरल और सुधा भी मंथन से अलग-अलग प्रकट हो गये थे ।

चौधरी साहब के व्यक्तित्व का विवाद कुछ अधिक ही विस्तृत है, क्योंकि विरोधाभास सूचक शब्द इनके जीवन में एक साथ जुड़े से दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे गरीब-किसान और राष्ट्रनायक, सरल एवं मृदु तथा कठोर एव कटु, संतोषी और महत्त्वाकाँक्षी, प्रारब्धवादी और कर्मयोगी तथा निष्पक्ष और पक्षपाती । इस विलक्षण व्यक्ति की प्रशस्ति और आलोचना भी इसी सन्दर्भ में होती रही है, पर हम जब ग्रहों की स्थिति पर विचार करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि यह व्यक्ति अधिकतर 'यथा नियुक्तोस्मि तथा करोमि' के बन्धन में रहता है । चौधरी साहब जन्म से किसान हैं । परन्तु जातक-ग्रह-स्थिति से पूर्ण राजयोग बन रहे हैं । अतः उन्हें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ राजपद पर पहुँचना ही है, जब कि ढुंढिराज के अनुसार द्वितीय भाव में गुरु की स्थिति जन्म समय व प्रारम्भिक जीवन में धनाभाव दर्शाती है, परन्तु लग्न में नवमेश सूर्य व दशमेश बुध का योग प्रबल राजयोग पाराशर के मत से है । धनु लग्न में बुध के लिए काशीनाथ ने 'निष्पापो भूप प्रजितः' लिखा है। द्वितीय स्थान के गुरु को कश्यप मुनि ने 'सर्वाधिराजः सुरराज मंत्री' बताया है । लग्न

में शुक्र का राजयोग कारक ग्रहों के साथ होने पर हरिवंश ने 'नृपो अथवा नृपोपमः सुपंडितः, पराक्रमी' तथा रहीम खानखाना ने 'अब्बल खाने जोहरा महबूब मुकर्रब नृपते' लिखा है। गुरु के साथ स्वराशि के द्वितीय स्थान पर बली शनि के बारे में भृगु–सूत्र में 'मढाधिपे क्षेत्रवान' लिखकर प्रबल राजयोग बताया है। साथ ही महर्षि पाराशर के अनुसार 'आत्मा कारक नवांशे केन्द्रेषु शुभे नूनं राजा प्रजायते' के आधार पर उच्च राज्यपद पर आसीन होना और अन्त समय तक रहना निश्चित-सा प्रतीत होता है। दशम में मंगल व गुरु दृष्ट–चन्द्र भी राजयोग कारक होता है। इन्हीं सब राजयोगों के कारण एक साधारण किसान–बालक आज भारत के गृहमन्त्री पद पर आसीन है और इतने प्रबल राजयोग वाले व्यक्ति को सीमित नहीं रख सकते, अतः आगे उठना निश्चित है।

जहाँ तक सरलता व मृदुवाणी का प्रश्न है, गर्ग मुनि के अनुसार लग्न में कारक बुध 'सुमूर्त्ति निपुणः शान्तो मेधावी च प्रियंवदः' बनाता है। वहीं पर दशम में मंगल कोलय दैवज्ञ के अनुसार 'शत्रुहंता तीक्ष्णं' तथा द्वितीय भाव का मकर का शनि जागेश्वर के मत से 'निष्ठुरं न शत्रुर्योभयं स्यात्' बनाता है। अतः दोनों ही गुण विद्यमान हैं, जो परस्पर विरोधाभासी हैं। उनकी गम्भीर सारगर्भित बातचीत में भी हास्य का पुट सदा रहता है।

वराहमिहर, वैद्यनाथ, ढुंढिराज दैवज्ञ एवं 'सारावली कार' कल्याण वर्मा के अनुसार द्वितीय भाव में बली शनि व गुरु तथा दशम में राहु वैराग्यवान व वीतरागी बनाते हैं और लग्न में अग्नितत्त्व की राशि धनु का सूर्य संतोष और बुध धैर्य प्रदान करता है। वहीं पर मानसागरीकार पंडित रूपनारायण के अनुसार द्वितीय स्थान का गुरु दशमस्थ मंगल को देखकर अति महत्त्वाकाँक्षी तथा जागेश्वर के अनुसार महत्त्वाकाँक्षा से शत्रु–वृद्धि करने वाला हो जाता है।

लग्न में सूर्य और शुक्र को मानसागरीकार ने प्रारब्धवादी बनाने वाला कहा है, परन्तु दशम का मंगल चमत्कार चिन्तामणिकार पंडित महानारायण के अनुसार महान कर्मयोगी 'द्वितीय कंठीरवः' दूसरा सिंह बनाता है। गुरु की दशम भावस्थ मंगल व चन्द्रमा पर दृष्टि बड़े काम करने वाले कर्मयोगी का द्योतक है।

इसी प्रकार नारद के अनुसार द्वितीयस्थ गुरु 'प्रमोदो बन्धु वर्गात्' अपने बन्धु-बान्धव को सुखी देखकर हर्षित होने वाला होता है। वहीं सारावलीकार कल्याण वर्मा ने द्वितीय भाव के बली शनि से 'न्यायकृत' की घोषणा की है और मानसागरीकार ने लग्न में सूर्य से अपनो पर भी न्याय से कोप करने वाला और शुक्र से सब पर समान-दृष्टि रखने वाला बताया है।

अब रह जाता है चन्द्रमा, जो राहुयुत एवं अष्टमेश होकर दशम में होने से वृहद् यवन जातक ने उतार-चढ़ाव का कारण बताया है। ऐसा ही मत मंत्रेश्वर, गुणाकार, मानसागरीकार, जैमिनी आदि का है।

ऊपर अनेक महान् त्रिकालज्ञ ऋषि, मुनि एवं दैवज्ञों के अनुसार ग्रहों के प्रभाव को हम चौधरी साहब के जन्म-चक्र से अलग-अलग अध्ययन कर चुके हैं। भिन्न-भिन्न गुण–दोष भी देखने में आये हैं, परन्तु ज्योतिष का मूल सिद्धान्त है कि जब तक सभी प्रमाणों का सम-सामयिकीकरण नहीं किया जाता, तब तक तत्त्वसार प्रगट नहीं होता, क्योंकि यदि नवग्रह की तरह नौ रंगों के बल्ब हम नौ जगहों पर जला दें, तो उनका स्वयं का तो प्रकाश नीला व लाल हो सकता है, परन्तु अलग-अलग स्थान पर प्रकाश का रंग सामूहिक प्रभाव से युक्त होगा। साथ ही हम जिस श्रेणी के व्यक्ति का अध्ययन कर रहे हैं, उसके सन्दर्भ में उस पर प्रभाव अलग ही पड़ेगा। क्योंकि :—

'इश्क की चोट तो पड़ती है दिलों पर यक सां,
ज़रफ़ के फ़रक़ से आवाज़ बदल जाती है।'

अतः जन्म चक्र के अनुसार चौधरी साहब के आत्मिक, मानसिक एवं शारीरिक गुणों की मीमांसा भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि स्वामी विवेकानन्द जी ने कहा था— 'किसी व्यक्ति की महानता उसके गुणों से परखी जाती है, दोषों से नहीं।' अतः चौधरी साहब की स्थिति में वृहद् ज्योतिषार्णव के अनुसार सूर्य, धार्मिक, आस्थावान तथा कीर्तियुत, चन्द्रमा-मानसागरी व जातक पारिजात के अनुसार

साधु, भक्त, दानी, महापुरुषों का भक्त व अनुगामी, बुध-वैद्यनाथ के मत से 'विद्या, तप, स्वधर्म निरतो', पडित नारायण भट्ट 'वरिष्ठधीयो: वैखरी वृत्तिभाज:', काशीनाथ 'निष्पापो', गुरु ढुंढिराज के मत से 'त्यागी सुशीलोगुणकीर्त्तियुक्त:', शुक्र-मानसागरीकार ने समदृष्टा, लोकप्रिय व स्वतन्त्र वक्ता होना कहा है। शनि व राहु वीतराग बनाते हैं। जैमिनी सूत्र के अनुसार सूक्ष्म कारकांश में गुरु, बुध, शुक्र का योग 'वैदिक-धर्म निष्ठावान्, ज्ञानी, वेदज्ञाता, शतायुराजौ' बनाता है। इसी प्रकार गुरु का बली शनि से योग 'वृत्ति सिद्धश्च शूरश्च यशस्वी देशाधिप:' का उद्घोष करता है। इन समस्त गुणों का समावेश श्री चरणसिंह में देखने को मिलता है। यदि हम निष्पक्ष होकर उन्हें पास से देखें और उनकी आत्मा व मन से वास्तविक सम्पर्क स्थापित करें। उनका हृदय देखने में वज्र सा कठोर क्यों न हो, पर यथार्थ में फूल-सा कोमल है और इसी कारण—

'यस्यचित्तम् द्रवीभूतम् कृपया सर्व जन्तुष:।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेणम् किम् जटा भस्म लेपनै:॥'

की यथार्थता को आत्मसात् कर सके हैं। महान् भारत के निरीह से निरीह दुखी शिशु की वेदना पर उनके वज्र-हृदय को द्रवीभूत होकर असीम आंतरिक वेदना से कलपते मैंने स्वयं देखा है। किसी का कष्ट सुनते ही वे करुणार्द्र हो उठते हैं और द्रवित होकर कहने लगत हैं कि 'बताओ क्या करें इसके लिए, मानो कोई अपनी मजबूरी पर स्वयं मदद माँग रहा हो। उनमें तड़प है जाने क्या-क्या करने की; ऐसे सभी दुखी, गरीब व दलित प्राणियों के लिए। प्रत्यक्ष को साक्षी की आवश्यकता नहीं पड़ती। धार्मिक आस्था के बगैर व्यक्ति अपने आदर्शों और मूल्यों पर अडिग नहीं रह सकता और फिर स्वामी विवेकानन्द जी ने ठीक ही लिखा है—

"Religion is the manifestation of divinity already in man."

और उक्त तथ्य चौधरी साहब में पर्याप्त है, तभी तो वे भारतीय संस्कृति को जीवन में ढाल सके हैं।

सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व के परिवेश में ही एक-एक गुण दोष को परखा जाता है, क्योंकि न्याय की माँग है—

"Document should be read as a whole, not in piece meal."

अत: इस दृष्टि से जब चौधरी साहब के विवादास्पद व्यक्तित्त्व को हम देखते हैं, तो जैसा शेक्सपियर ने कहा है—

"Nothing is what is seems."

वैसा ही पाते हैं, क्योंकि वे राष्ट्रनायक होते हुए भी किसान जैसे सरल व सादे हैं। उनमें गुण हैं कि वे सीधे-सच्चे व्यक्ति को उसके कंधे पर हाथ रखकर अपने निकट बैठाने में तिल भर भी संकोच नहीं करते। उनकी वेशभूषा, खानपान, रहन-सहन, बातचीत, सब साधारण किसान जैसी है, वह किसान जो भारत की आत्मा है। सरलता व मन की कोमलता उनका सहज गुण है। जनहित में कठोरता तो उन्हें अपनानी पड़ती है। गलत काम करने वालों के लिए उन्हें आँख लाल करनी पड़ती है; किन्तु जनहित में स्वार्थ में नहीं, क्योंकि द्वितीय भावस्थ गुरु दण्ड देने वाला शासक बनाता है। अत: न्याय के सन्दर्भ में दण्ड भी निष्पक्ष होता है। उनका सरल व भोले स्वभाव का मूल मंत्र है—

'कबिरा आप ठगाइये, कबहुँ न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय॥'

और इसी कारण उन्होंने निकटतम लोगों से अक्सर धोखा खाया है। इससे बड़ी सहज सरलता क्या होगी ?

उनकी महत्त्वाकांक्षा एक सच्चे देशभक्त व महान् भारत के सन्दर्भ में है। अपनी 'मसर्रतों की तलाश' में नहीं, क्योंकि स्वयं वे सन्तोषी न होते, तो सादगी, सरलता के प्रतिरूप न होते। इसी प्रकार कर्मयोग का सार है 'कर्मण्येवाऽधिकारस्ते', तो प्रारब्धवादिता का सार है 'माँ फलेषु कदाचन', जो चौधरी साहब में एक दूसरे के पूरक रूप में विद्यमान हैं, जहाँ 'प्रमोदोबन्धु वर्गानि' अपने बन्धु-बान्धव को देखकर हर्षित होने वाला देखकर लोग उन्हें 'जातिवादी' समझने की गलतफहमी में भी पड़ जाते हैं, परन्तु यह भूल जाते हैं कि जब व्यक्ति आत्म दर्शन करता है, तो उसमें विराट् स्वरूप प्रकट होता है और फिर भेद-बुद्धि समाप्त हो जाती है। वह तो सिर्फ उन लोगों का भ्रम है, जो जाति विशेष से

अपने को आबद्ध कर चौधरी साहब को अपनी भ्रमित-दृष्टि से अपने साथ बँधा देखते हैं। वास्तव में चौधरी साहब प्राणी मात्र के हैं, क्योंकि 'सर्वं खलुमिदं ब्रह्म' एक ऐसा सत्य है, जो प्राणी को बन्धन-मुक्त करता है। इस दर्शन पर चलने वाले चौधरी साहब स्वयं इन सब छोटे दायरों से परे हैं, मुक्त हैं। उनके लिए सभी आत्मीय हैं।

चौधरी साहब के जीवन पर महर्षि दयानन्द जी, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द जी, महात्मागाँधी जी और लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल के जीवन चरित्र, दर्शन व ज्ञान की पूरी छाप है। वह अपने पंच-तत्त्व शरीर, मन और बुद्धि को इन्हीं पंच-महापुरुषों के गुणों को आत्म-सात् कर अपने में ढालने और पालने के लिए सतत् यत्नशील रहे हैं। यही कारण है कि वह सदैव आगे बढ़े हैं तथा चारित्रिक, आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में नयी रचनात्मक दिशायें दे सके हैं। व्यक्ति, पार्टी और देश की एकता उनकी लगन रही है। अब रही इस महापुरुष के भविष्य की बात, सो अष्टमेश केन्द्र पर गुरु की दृष्टि, अष्टम भाव गुरु से दृष्ट दीर्घायु कारक होता है। यह बराह-मिहर का मत है। लग्न में शुक्र मंत्रेश्वर कल्याण वर्मा तथा पाराशर के मत से दीर्घायु कारक होता है। अन्य मतों से भी उनका दीर्घायु होना निश्चित है। इस प्रकार महान् भारत का यह सपूत भारत माता का ऋण पूरा-पूरा चुकाने में समर्थ होगा।

'धर्मो रक्षति रक्षितः; यतो धर्मस्ततो जयः'

●

जन्माङ्ग चक्र

जन्म—२३ दिसम्बर, १९०२, हस्त नक्षत्र, चतुर्थ चरण

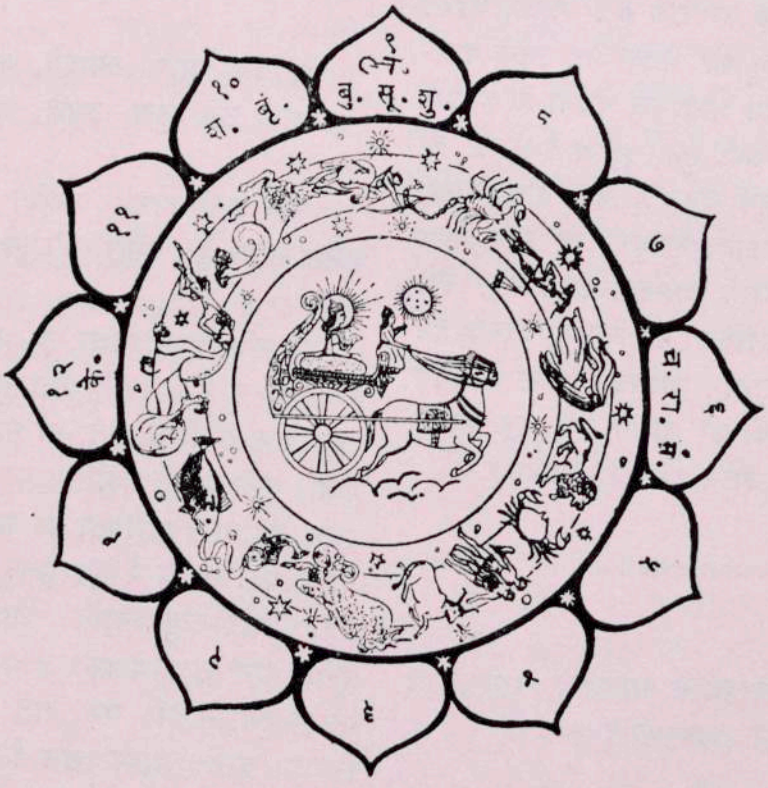

●

देश की वर्तमान स्थिति और चौधरी साहब

□ नरेन्द्र मोहन
संपादक जागरण

देश की जो आज स्थिति है और विशेष रूप से जिस राजनीतिक झंझावात से देश गुजर रहा है, उसमें यह कहना किसी के लिए भी कठिन होगा कि अब कब तक वास्तविक सुधार हो सकेगा। पर, इस सारे सन्दर्भ में यदि कहीं कोई भी शुभ-लक्षण है, तो यह है कि आज देश का नेतृत्व जिन व्यक्तियों के हाथों में है, उनकी व्यक्तिगत ईमानदारी सन्देह से परे है। सामान्यतः नियम यही है कि ईमानदारी और कर्मठता का आधार लेकर जो भी चला है, उसके हाथ सफलता आनी ही चाहिए। हाँ, आज कठिनाइयाँ अवश्य हैं और आगे भी आयेंगी, पर उनका समाधान अन्ततः खोजा जा सकेगा।

जिन चोटी के नेताओं के हाथों आज देश की बागडोर है, उनमें इस समय सबसे अधिक विवाद चौधरी चरणसिंह के व्यक्तित्व को लेकर हो रहा है। लेकिन इन तमाम विवादों के बाद भी किसी का यह साहस नहीं है कि वह चौधरी साहब की ईमानदारी पर अथवा उनकी कर्मठता पर सन्देह कर सके। उनके काम करने का अपना एक तरीका है और यह तरीका औरों से बिल्कुल भिन्न है। शायद इसीलिए अनेक बार उससे एक विशेष प्रकार का राजनीतिक कोलाहल हो जाता है। इसके बाद भी चौधरी साहब के हाथों जब जो भी काम आया, वे अपने पक्के इरादों के कारण उसमें अभी तक सफल ही हुए हैं और उनका व्यक्तित्व एक दृढ़-प्रशासक के रूप में ही उभर कर सामने आया है। कुछ समय पहले चौधरी साहब पर सबसे बड़ा आरोप यह था कि वे जातिवाद को प्रश्रय देते हैं और विशेष रूप से ब्राह्मणों व वैश्यों के विरोधी हैं, लेकिन यह राजनीतिक आरोप बहुत दिन तक ठहर नहीं सका। यह ठीक है कि चौधरी साहब के मन में पिछड़े वर्गों के लिए एक विशेष हमदर्दी है और वे अपनी नीतियों को कृषक-प्रधान व ग्राम-परक बनाना चाहते हैं, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं हो जाता है कि वे अन्य वर्गों के उग्र विरोधी हैं। यह बात बहुत कम लोगों को मालूम है कि चौधरी साहब का पारिवारिक जीवन जाति-पाँति के बिल्कुल विरुद्ध है। उन्होंने अपने बच्चों का विवाह जाति-पाँति के बन्धन तोड़कर ही किया है और आज भी वे जाति-पाँति की कड़ी से कड़ी भर्त्सना करने के लिए हर स्तर पर तैयार हैं और करते हैं।

पिछले एक वर्ष के दौरान देश में जो जातिवाद बढ़ा है, इसके लिए चौधरी चरणसिंह को उत्तरदायी मानना ठीक नहीं होगा। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के लिए किसी भी एक स्थिति को उत्तरदायी ठहराना अनुचित है। देश में जातिवाद इसलिये बढ़ा, क्योंकि हमारे राजनीतिज्ञों का पिछले तीस वर्षों का यही अनुभव है कि जातिवाद बढ़ाने में उनके राजनीतिक हितों की रक्षा होती है। यह एक कटु सत्य है कि आज भी देश के अधिकांश चुनाव जातिवाद या वर्गवाद के नाम पर लड़े जाते हैं। 'ऐसा नहीं होना चाहिए,' यह बात कहते सभी हैं, लेकिन जब चुनाव का अवसर आता है, तो जाति–तोड़ो का सिद्धान्त महज कागजी सिद्धान्त बन जाता है। चुनाव के अवसर पर होने वाले प्रचार में जातिवाद का कितना बड़ा हाथ है, इसे देश का प्रत्येक राजनीतिज्ञ जानता है, पर दुर्भाग्यवश इस समस्या का समाधान आज तक

नहीं खोजा जा सका। आज जो राजनीतिक स्थिति बनती जा रही है, उसमें जाति-तोड़ो के स्थान पर जातिप्रथा को और अधिक मजबूत बनाने की कोशिश की जा रही है। पिछड़े वर्गों को संरक्षण देने के नाम पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण देने की जो नयी-नीति अपनायी गयी, वह इसका सबसे ताजा उदाहरण है। सामान्यतः चौधरी साहब इस बात का विरोध करते रहे हैं कि महज जाति के आधार पर सरकारी नौकरियों में आरक्षण न किया जाय। उनका यह मत रहा है कि यह आरक्षण आर्थिक-आधार पर किया जाये। उचित यही रहेगा कि चौधरी साहब अपनी इसी नीति को आगे बढ़ायें। बात बहुत साफ है। यदि देश को जातीय दंगों से बचाना है, तो सरकारी नौकरियों में आरक्षण के आधार को आर्थिक बनाना होगा, जाति-परक नहीं।

इस समय देश की राजनीति में जो एक नया तत्त्व आया है, उसका सम्बन्ध घटकवाद से है। इस घटकवाद से लगभग सभी राजनीतिक दल पीड़ित हैं। यूँ तो आन्तरिक गुटबाजी राजनीति का एक अंग है और उसका एक दुर्भाग्यपूर्ण काला प्रकरण भी है, पर जब से जनता पार्टी का औपचारिक गठन हुआ है, तब से यह घटकवाद बहुत तेजी से सिर उठा रहा है। अक्सर ऐसा लगता है कि जनता पार्टी का अपना कोई भी व्यक्तित्व नहीं है और जो भी व्यक्तित्व है, वह उन विभिन्न घटकों का है, जिनसे मिलकर यह दल बना है। यह एक ऐसा आरोप है, जिससे चौधरी चरणसिंह जी भी अपने आपको आसानी से नहीं बचा सकेंगे। भारतीय क्रान्ति दल के सदस्यों के प्रति और विशेष रूप से उन सदस्यों के प्रति, जिन्हें आपात्स्थिति के दौरान बहुत अधिक सताया गया व प्रताड़ित किया गया, चौधरी साहब को विशेष हमदर्दी है। इस हमदर्दी को अस्वाभाविक नहीं माना जाना चाहिए, पर देश की राजनीति की भलाई इसी में है कि इस मनोदशा पर चौधरी साहब काबू पायें। यहाँ यह बात पूरी तौर पर स्पष्ट हो जाना आवश्यक है कि बी० के० डी० के सदस्यों के प्रति चौधरी साहब की हमदर्दी का कारण भले ही उनकी राजनीतिक अनिवार्यता हो, लेकिन ऐसा नहीं है कि चौधरी साहब जनता पार्टी के अन्य घटकों को महत्व नहीं देना चाहते। घटकवाद की जो स्थिति जनता पार्टी में है और उसमें चौधरी साहब का जो भी रुख है, उसके पक्ष और विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है, पर पार्टी के बीच होने वाले ये मतभेद अस्वाभाविक नहीं है और जो चीज अस्वाभाविक नहीं है, उस पर चर्चा तो होनी चाहिए, लेकिन उसका वितण्डा नहीं बनाया जाना चाहिए।

आज देश का भाग्य बहुत कुछ उत्तर प्रदेश और बिहार की राजनीतिक स्थिति पर निर्भर करता है और सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि इन दोनों राज्यों में राजनीतिक स्थिति तेजी से बिगड़ती ही चली जा रही है। यह भी एक वास्तविकता है कि चौधरी साहब का आज इन राज्यों पर विशेष प्रभाव है। हरियाणा की राजनीति भी बहुत कुछ चौधरी साहब के हाथों में है, पर वहाँ की स्थिति इतनी बिगड़ी नहीं है, जितनी कि उत्तर प्रदेश और बिहार की बिगड़ी हुई है। जहाँ तक उत्तर प्रदेश की बात है, आज आम धारणा तो यह है कि यहाँ की राजनीति और यहाँ का प्रशासन बिल्कुल चौधरी साहब की मनमर्जी पर चलता है। इस चर्चा ने चौधरी साहब की व्यक्तिगत राजनीतिक स्थिति को निश्चित रूप से प्रभावित किया है।

चौधरी चरणसिंह के राजनीतिक जीवन की आज सबसे बड़ी कसौटी यह नहीं है कि वे भारत के गृहमन्त्री के रूप में कितने सफल होंगे या कितने असफल, बल्कि यह है कि आज उत्तर प्रदेश और बिहार में जो कुछ हो रहा है, उसका कितनी सफलता के साथ वे निबटारा कर सकेंगे? यदि उत्तर प्रदेश और बिहार और अधिक नीचे गिरता है और इन राज्यों में शान्ति और व्यवस्था की स्थिति और अधिक बिगड़ती है, तो यह स्थिति चौधरी साहब के राजनीतिक व्यक्तित्व के लिए गिरावट का कारण बनेगी। समझ में यह नहीं आता कि चौधरी साहब ने यह सब जानते हुए कम से कम उत्तर प्रदेश में ऐसे व्यक्तियों को अपना समर्थन क्यों दे दिया, जिनकी ईमानदारी और कुशलता पर प्रदेश की जनता ने पहले भी सन्देह किया था। जहाँ तक श्री रामनरेश यादव की बात है, वे निश्चित रूप से एक बहुत ईमानदार व्यक्ति हैं; लेकिन यही बात उनके मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्यों के बारे में तो नहीं कही जा सकती। उत्तर प्रदेश और बिहार के अनेक मन्त्री अपने तुगलकी फरमान जारी करने के कारण जनता के बीच बहुत बदनाम हो चुके हैं। इनमें से अनेक ऐसे व्यक्ति भी हैं, जिन्हें राज्य का शासन चलाने के लिए तनिक भी योग्य नहीं माना जा सकता। आज यह एक बहुत

बड़ा प्रश्न है, जिसका उत्तर, प्रदेश की जनता चौधरी साहब से ही माँगना चाहेगी कि आखिर इन व्यक्तियों के हाथों शासन की बागडोर क्यों दी गयी ? आखिर जनता तो जिससे प्यार करती है, उसीसे अपने सवालों का जवाब भी चाहती है। उत्तर प्रदेश की जनता और विशेष रूप से यहाँ का किसान चौधरी साहब को अपना एक प्रमुख साथी और नेता मानता है और यही कारण है कि हर अच्छाई और बुराई का सेहरा भी चौधरी साहब के सिर ही आयेगा।

हमारे देश का किसान भले ही पढ़ा-लिखा न हो, लेकिन उसमें एक अच्छी-खासी राजनीतिक समझ है। वह अपनी भलाई और बुराई को बहुत अच्छी तरह समझता है और राष्ट्रीय-महत्व के प्रश्नों पर एक ठोस-प्रतिक्रिया व्यक्त करना भी जानता है। आजादी के पहले की स्थिति हो या आजादी के बाद की, इस देश के समक्ष जब भी कभी कोई महत्त्व-पूर्ण प्रश्न उपस्थित हुआ है, तो देश के किसानों ने और सामान्य जनता ने कुल मिलाकर एक अच्छी राजनीतिक समझ का परिचय दिया है। उत्तर प्रदेश, हरियाणा, बिहार या मध्य प्रदेश के किसान चौधरी साहब को अपना अनन्य समर्थन दे रहे हैं, तो इसे कोई एक आकस्मिक घटना नहीं माना जाना चाहिए। केवल किसानों के लिए बहुत कम नेताओं ने उतना काम किया है, जितना चौधरी साहब ने अकेले किया है। उनकी वेश-भूषा, उनका स्वभाव उनके सोचने का तरीका, किसानों के पक्ष में लगभग एकांगी हो चुका है और अक्सर ऐसा लगने लगता है कि जैसे किसानों का पक्ष लेकर वे दुराग्रह की सीमा पर पहुँच रहे हैं; पर वास्तव में दुराग्रह है या नहीं, इस पर आज देश में बड़ा विवाद है, पर सच बात यही है कि अभी भी देश के किसानों के लिए उन्हें बहुत कुछ करना है और देश के किसानों को चौधरी साहब सरीखे साथी की जरूरत है।

●

शुभ-संकल्प की शक्ति अपार होती है; जिसे यह संकल्प मिल जाता है, उस पर भगवान् की कृपा होती है और वह जगत का उपकार कर जाता है। चारों ओर के घनीभूत अन्धकार में यह बात क्षण भर के लिए प्रकाश दे जाती है और थोड़ा भी प्रकाश वस्तुस्थिति को उसके यथार्थ रूप में प्रकट करने में समर्थ होता है।

—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

●

नई आर्थिक नीति

□ सुरेन्द्र तिवारी

"चौधरी चरणसिंह बड़े कठोर व्यक्ति हैं, चौधरी चरण सिंह एक ऐसे राजनीतिज्ञ हैं, जो किसी भी स्तर पर समझौता करना नहीं जानते; चौधरी चरणसिंह बड़े किसानों के प्रतिनिधि हैं; चौधरी चरणसिंह यह हैं–वह हैं," आदि-आदि। इस बीच अखबारों की सुर्खियों में इस तरह की बहुत सी बातें देखने-सुनने को मिली हैं। संक्षेप में वह सब बातें कही जा रही हैं, जो चौधरी चरणसिंह पर किसी तरह लागू नहीं होतीं। मेरे सामने चौधरी चरणसिंह की तस्वीर एक ऐसे राजनीतिक की तस्वीर है, जो हर कीमत पर छोटे आदमियों की भलाई के लिए बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा काम करने के लिए हमेशा प्रस्तुत रहता है। जब चौधरी साहब ने अर्थ-नीति पर भी अपनी राय जाहिर करने की जरूरत समझी, तो कुछ लोगों ने कहा कि अब राजनीति से चौधरी चरणसिंह अर्थ-नीति पर भी व्याख्यान देने लगे हैं। कम लोगों को पता होगा कि अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भिक काल से ही चौधरी चरणसिंह गाँधीवादी अर्थ-नीति के बहुत बड़े पोषक रहे हैं और वह भारत को गाँधी जी की कल्पना का भारत बनाने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहे हैं।

राष्ट्रीय-स्तर पर उनके उदय का समय बहुत लम्बा नहीं है, लेकिन उत्तर प्रदेश के लम्बे सेवाकाल में उन्होंने अपने प्रदेश को गाँधीवादी अर्थव्यवस्था के अनुसार ढालने की निरन्तर कोशिश की है। उनके राजस्व-मंत्रित्व काल में ही उत्तर प्रदेश के सारे भूमि सम्बन्धी रिकार्ड सही किये गये। यह एक बड़ा कार्य था। जमींदारी उन्मूलन की रूपरेखा और कार्यान्वयन में भी चौधरी साहब का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष हाथ बराबर रहा है। अपनी मान्यताओं को, जिन्हें वह गाँधी जी की मान्यताएँ मानते हैं, साकार करने की प्रक्रिया में उन्हें यदि बड़े से बड़े व्यक्ति का भी विरोध करना पड़ा, तो उसे उन्होंने धर्म मानकर किया, केवल विरोध के लिए नहीं। लेकिन अक्सर लोग यह कहते हैं कि चौधरी चरणसिंह जवाहरलाल की छवि को बिगाड़ने में लगे हुए हैं या भूतपूर्व प्रधानमन्त्री को व्यक्तिगत रूप से हानि पहुँचाने में संलग्न हैं। मैंने इन दोनों ही प्रश्नों पर उनसे बात की और पाया कि बुनियादी तौर पर यह दोनों ही बातें गलत हैं। जवाहरलाल जी के प्रति उनके मन में श्रद्धा है, हमेशा थी, पर सहकारी खेती के विरुद्ध होने के कारण उन्होंने नागपुर काँग्रेस के समय जवाहर लाल जी का सैद्धान्तिक आधार पर विरोध करना अपना धर्म समझा था। इन्दिरा जी के प्रति भी उनके मन में दुर्भावना नहीं है। एक दिन कुछ लोगों ने उनसे कहा कि आपके गृहमन्त्री बनने के बाद लोगों को आपसे तत्काल कुछ बड़े कदम उठाने की आशा थी। उन्होंने बिना रुके जवाब दिया "लोग यही चाहते थे न कि जिस दिन भी मैं गृहमन्त्री बनूँ, उसके दूसरे दिन इन्दिरा गाँधी को गिरफ्तार करके जेल भेज दूँ। अगर यही आशायें मुझसे थीं, तो वह पूरी न होंगी। यदि मैं अकारण ही, बिना कानूनी कार्यवाही और बिना दोष सिद्ध हुए किसी को जेल भेज दूँ, चाहे वह इन्दिरा गाँधी ही क्यों न हों, तो मुझमें और आपात्कालीन सरकार में फर्क क्या रह जायेगा?" अब यदि कोई चौधरी चरणसिंह को नेहरू-विरोधी कहे, तो मैं इसे प्रचार-मात्र की संज्ञा ही दूँगा।

आम आदमी के लिये छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा काम कर सकने की प्रवृत्ति ने ही उन्हें इस बात पर मजबूर किया कि वह अर्थ-व्यवस्था पर भी ध्यान दें, क्योंकि बिना अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ हुए कोई भी समाज तरक्की नहीं कर सकता। इसके लिए चौधरी साहब, जो बुनियादी तौर पर राजनीतिज्ञ हैं, का ध्यान अर्थनीति की ओर भी गया। चौधरी साहब के अनुसार उत्पादन के तीन कारक हैं—भूमि, श्रम तथा पूँजी। इनमें से किसी एक या एक से अधिक कारकों में वृद्धि करके अथवा इन कारकों के प्रयोग के उपाय अथवा उपायों में सुधार करके कृषि का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। इसका अर्थ है कि खेती के उपायों तथा प्रविधियों में नवीनता लायी जाय, तो उत्पादन बढ़ सकता है। जहाँ तक भूमि का सम्बन्ध है, वह अत्यावश्यक कारक है, लेकिन उसका क्षेत्रफल निर्धारित है, और मनुष्य चाहे जितना प्रयत्न कर ले, उसे बदला नहीं जा सकता, न बढ़ाया ही जा सकता है। लेकिन भूमि की उत्पादकता इस पर मुनहसिर है कि वह किसके पास है और वह उस पर कैसे काम करता है—आज खेतिहर स्वावलम्बी और खुद मुख्तार है, खेतों का सहकारीकरण या सामुहिकीकरण हो गया है, या फिर बहुत बड़े-बड़े सरकारी निजी फार्म हैं।

हमारे खेतिहर संगठन के या यों कहिये कि सारी अर्थ-व्यवस्था के सम्भवतः चार उद्देश्य ही हो सकते हैं :—

क—सम्पत्ति का अधिकतम उत्पादन हो अर्थात् गरीबी का उन्मूलन हो। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भारत के लिए जरूरी है कि हमारे सामाजिक व आर्थिक मनोभावों में परिवर्तन के साथ-साथ कृषि की व्यवस्था इस प्रकार की जाये कि जैसे-जैसे समय गुजरे खाद्यान्नों व कच्चे माल का अधिकाधिक उत्पादन हो सके।

ख—रोजगार की व्यवस्था की जाये। अन्तिम उद्देश्य यही है कि खेतों पर काम करने के लिए कम से कम लोग रहें, ताकि सभ्य समाज के लिए आवश्यक औद्योगिक माल के उत्पादन और सेवाओं में अधिकाधिक काम करने के लिए उन्हें खेती से छुड़ाया जा सके। लेकिन जब देश में लाखों बेरोजगार व अर्द्ध-रोजगार व्यक्ति रोजगार या पूर्ण रोजगार की तलाश में फिर रहे हों, तो हमें खेती की ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जो प्रति एकड़ भूमि पर अन्य व्यवस्थाओं की अपेक्षा अधिक लोगों को रोजगार दे सके।

ग—सम्पत्ति का न्यायोचित वितरण हो अथवा आय में अनुचित असमानता न हो। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए भूमि के वर्तमान स्वामित्व व भावी-उत्पादन पर अधिकतम सीमा लगा दी जाये और सम्भव हो तो न्यूनतम सीमा भी निर्धारित कर दी जाये।

घ—जिन्दगी के उस ढंग का प्रसार हो, जो हमने अपने लिए चुना है।

हमारा दावा है कि ऐसी व्यवस्था से ही हम इन चारो उद्देश्यों को पूरा कर सकते हैं, जिसमें स्वावलम्बी और खुद मुख्तार खेतिहर अपनी छोटी-छोटी जोतों के मालिक हों और सेवा-सहकारी समितियाँ उनको एक दूसरे से जोड़ती हों। इसके लिए जरूरी है कि हर खेतिहर को उस भूमि पर, जो उसके पास है, स्वामित्व प्रदान किया जाये और उसे बेदखल किये जाने की चिन्ता न सताती रहे।

उनके अनुसार हमारे देश की खेतिहर-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसके द्वारा भूमि का अधिक से अधिक उपयोग हो सके यानी प्रति एकड़ अधिक से अधिक उपज दे सके, चाहे इतनी उपज श्रम व पूँजी के अधिकतम उपयोग के अनुरूप हो, चाहे न हो। दूसरे शब्दों में हमारे लिये वही अर्थव्यवस्था अच्छी है, जिसमें हम भूमि से पूरा लाभ उठाने के लिए अधिक श्रम या पूँजी या दोनों का प्रयोग कर सकें और प्रति एकड़ अधिक से अधिक उपज प्राप्त कर सकें।

चौधरी साहब साझे की खेती, सहकारी खेती, सामूहिक खेती या उसे जो भी नाम दिये जायें, के भयकर विरोधी रहे हैं; उसके लिए वह तरह-तरह के तर्क भी प्रस्तुत करते रहे हैं। उनके अनुसार "कृषि तो जैव-प्रक्रिया है। उसमें समय की बचत और छोटे-बड़े का फर्क सम्भव नहीं है। पौधों को बढ़ने के लिए उतनी ही जगह चाहिए और फसल को पकने के लिए उतना ही समय चाहिए, चाहे खेत छोटा हो, चाहे फार्म बड़ा हो। अन्य ऐसी कोई वैज्ञानिक प्रोद्यौगिकी

नहीं है, जो बड़े फार्म पर तो काम आ सके, किन्तु छोटे खेत के लिए बेकार हो। खेती में जोत का क्षेत्र बढ़ाने से उत्पादन नहीं बढ़ता, यह तो दूसरे धन्धों में होता है। इसके विपरीत, साझे की खेती में अभिप्रेरण दुर्बल हो जाता है, इसलिए उत्पादन कम हो जाता है।

जहाँ तक बड़े सहकारी फार्मों का सवाल है, मानव-स्वभाव तो ऐसा है कि एक माँ के जने दो भाई भी परिवार के मुखिया के मरने पर अलग हो जाते हैं। इसीलिए यह विचार कपोल-कल्पना है कि सहकारी फार्म बनने पर मामूली गृहस्थ यकायक पड़ोसियों तथा गाँव के अन्य लोगों के हितों को, जिनसे उसका वास्ता नहीं, अपने हित समझने लगेगा। सहकारी फार्म ऐसे लोगों को एक साथ लाने का प्रयास है, जिनमें न कोई पारिवारिक रिश्ता है, न सामाजिक; वे हिन्दू होंगे, मुसलमान होंगे, ब्राह्मण होंगे, भूस्वामी होंगे, पट्टेदार होंगे, खेतिहर होंगे, गैर खेती वाले होंगे। यदि मनुष्य इस ऊँचाई तक पहुँच जाये, जहाँ वह हर व्यक्ति की भलाई में ही अपनी भलाई समझने लगे, तो वह गृहस्थ ही नहीं रहेगा; परिवार, भाषा, धर्म व देश के बन्धन उसके लिए निरर्थक हो जायेंगे। ऐसी आदर्श-स्थिति में तो आयोजन की आवश्यकता ही नहीं रहेगी, आर्थिक-नियम बेकार हो जायेंगे और प्रशासन की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। माँ अपने बच्चों को पालती-पोसती है, क्योंकि वह स्वार्थी होती है—इसलिए नहीं कि उसे अपने बच्चों में दुनिया भर के बच्चों की शक्ल दिखायी देती है। अपने जीवनकाल में ही स्वर्णयुग तक पहुँचने के अपने उत्साह में हमें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि मनुष्य केवल तर्क के सहारे चलता जीव नहीं है। वह अपने दिमाग की अपेक्षा दिल से ज्यादा काम लेता है और अब तक दिल उतना आगे नहीं बढ़ा है, जितना दिमाग। यह भी सन्देहजनक है कि दिल उतना आगे बढ़ पायेगा जितना कि दिमाग, जिसने दूरी को कम कर दिया है और दुनिया को उससे कहीं छोटा बना दिया है, जितनी वह हमारे पूर्वजों के जमाने में थी। विज्ञान की प्रगति और वाह्य-जगत पर नियन्त्रण के प्रयास ऐसी जगह तक नहीं पहुँच सके हैं कि अहं के आन्तरिक संसार को नियन्त्रित कर सकें और जब तक यह नहीं होता, तब तक आर्थिक साझेदारी न सुचारु रूप से चल सकती है और न सफल हो सकती है। मनुष्य आज भी उतना ही स्वार्थी व लालची, घमण्डी व दूसरों से जलने वाला तथा महत्वाकाँक्षी है, जितना महाभारत के दिनों में था।

आप उनके इस मनोवैज्ञानिक और मानवीय तर्क से सहमत हों या न हों, बहुत से लोगों के लिए, जो खेती के काम में संलग्न हैं, यह तर्क बहुत महत्वपूर्ण है। वह भूमि की अधिक से अधिक और कम से कम सीमाओं के पक्ष में हैं। हाँ, यह सीमाएँ हर क्षेत्र के लिए अलग-अलग हो सकती हैं, जिनके निर्धारण में कुछ तत्वों को ध्यान में रखना होगा—जैसे उस क्षेत्र में खेतिहर जनसंख्या, भूमि-मनुष्य अनुपात या वहाँ की भूमि की उत्पादकता यानी रेतीले क्षेत्र में उच्चतम सीमा २५ एकड़ और न्यूनतम ५ एकड़ हो सकती है, लेकिन आबपाशी वाले क्षेत्र में १२.५ एकड़ व २.५ एकड़ होना उपयोगी होगा। जमीन ऐसी चीज नहीं है, जो नष्ट हो सके। इसलिए जो लोग उस पर मेहनत करते हैं, उनको सुरक्षा की भावना उसी से मिलती है। जमीन कभी भी किसी को पूरी तरह निराश नही करती। यह आशा हमेशा बनी रहती है कि आज नहीं तो कल इसी से खुशहाली आयेगी। और अक्सर यह आशा पूरी भी होती है। भूमि-स्वामित्व का प्रश्न चौधरी चरणसिंह के अनुसार एक ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसे पूरे परिप्रेक्ष्य में रखा जाना चाहिए।

चकबन्दी व सेवा-सहकारिता के विषय में अपनी पुस्तक 'भारत की अर्थनीति' में चौधरी साहब ने लिखा है कि "सहकारी या अन्य किसी प्रकार की साझे की खेती को यदि छोड़ दिया जाये, तो खेतिहर संगठन के क्षेत्र में केवल एक ही काम करना बाकी रह जाता है अर्थात् जोतों की चकबन्दी। इस पर विचार करने और काम करने की आवश्यकता है। हमें यहाँ चकबन्दी के पक्ष में कोई दलील देने की जरूरत नहीं है; सक्षेप में, इतना कहना ही आवश्यक है कि बिखरी हुई जोतों का एक चक्र बना देने से उत्पादन के तीनों कारकों अर्थात् भूमि, श्रम व पूँजी का कारगर ढंग से उपयोग किया जा सकता है।

चकबन्दी से केवल बिखरी हुई जोतों की समस्या का हल होता है। यह सीमान्त छोटी, अलाभकर या घाटे की जोतों की समस्या का हल नहीं है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है और कृषीतर उद्योगों का अभाव बना रहता है,

अलाभकर जोतों की संख्या बढ़ती जाती है, इन जोतों पर एक औसत आकार के परिवार के लिए पूरा काम नहीं होता और ये जोतें एक परिवार को सुविधापूर्वक रहने के साधन तो दूर रहे पेट भर खाना व तन ढकने को पूरा कपड़ा भी नहीं दे पाती हैं ।

यह पहले भी कहा जा चुका है कि खेतों के स्वामित्व को साझे की खेती में बदलना ऐसा संगठनात्मक परिवर्तन है, जिसका हर जगह खेतिहर विरोध करते हैं। साझे की खेती से न उत्पादन बढ़ता है, न बेरोजगारी घटती है और न जनतन्त्रीय व्यवहार सुदृढ़ होता है। और फिर ऐसे तकनीकी सुधार व सुविधाएं हैं, जिनका खेतिहर स्वागत करेंगे—जैसे सिंचाई, पानी की व्यवस्था, अच्छी खाद, उन्नत-बीज, कीटाणुनाशक दवायें और आमतौर से खेती के अच्छे उपाय। इनसे उत्पादन बढ़ता है और खेतिहर की आय भी। इनको आसानी से छोटी और बड़ी जोतों पर इस्तेमाल किया जा सकता है। इन सुविधाओ के प्रयोग के लिए बड़े पैमाने के फार्म होना जरूरी नहीं और खेत छोटा हो तो भी तकनीकी प्रगति में कोई बाधा नहीं पड़ती।

हमें केवल इतना करने की जरूरत है कि निजी स्वामित्व व स्वय भूमि के उपयोग की अभिप्रेरणाओं को बड़े फार्म के लाभो के साथ जोड़ दें। हमारे देश में जोतें छोटी हैं और छोटी रहेंगी। सहकारिता के सिद्धान्त से ही उनकी समस्या हल हो सकती है। सहकारिता का अर्थ है—अन्यथा स्वतन्त्र इकाइयों का घनिष्ठ एका—विभिन्न स्वतन्त्र जोतों का केवल एक साथ जमा किया जाना—ताकि उस हानि से बचा जा सके, जो अलग व अकेले रहकर काम करने से होती है। सहकारिता का वास्तविक उद्देश्य है, पहले तो जोतों का आकार छोटा होने तथा व्यावसायिक सभ्यता के तौर-तरीकों से अपरिचित होने से जो अयोग्यतायें उत्पन्न होती हैं, उनसे किसानों की रक्षा करना और दूसरे निजी सम्पत्ति की सभी भलाइयाँ व तकनीकी लाभों को किसानों को उपलब्ध कराना। सहकारिता का विस्तार खेती अथवा उत्पादन की क्रिया तक करने की आवश्यकता नहीं है, अर्थात् खेत प्रबन्ध के उन कार्यो का सहकारीकरण करने की जरूरत नहीं, जो एक छोटे खेत की सीमा के अन्दर किये जा सकते हैं। ऐसे कार्य जो स्वतन्त्र रूप से किसान स्वयं करेगा—यदि सहकारी समिति या संगठन के सदस्य अपनी आर्थिक व निजी स्वतन्त्रता का बलिदान करेंगे, तो वह विलयन होगा, सहकारिता नहीं।

जमीन के अतिरिक्त दो अन्य ऐसे महत्वपूर्ण विषय हैं जो हमारी अर्थनीति को नियंत्रित करते हैं। इसलिए यदि देश का आर्थिक विकास करने की दिशा में हमें आगे बढ़ना है, तो उसका अर्थ होगा कि मनुष्य को कृषि से हटा कर उद्योग, वाणिज्य तथा अन्य कृषीतर व्यवस्थाओं में लगाया जाये, लेकिन उसी हद तक, जिस हद तक कम से कम आदमियों को खेती में लगाकर उसका उत्पादन ज्यादा से ज्यादा बढ़ाया जाये। इसके लिए आवश्यक होगा कि भूमि में पूँजी उससे कहीं अधिक मात्रा में लगायी जाये और कृषि में तकनीकी सुधार बहुत तेजी से लाये जायें, दूसरे शब्दों में भारत का आर्थिक-विकास किस हद तक होगा यह इस पर निर्भर है कि हम किस हद तक कृषि—कार्यों में सुधार कर सकते हैं और किस मात्रा में भूमि में पूँजी लगा सकते हैं। सिंचाई और खाद के लिए पूँजी लगाने की आवश्यकता के साथ-साथ अनुसन्धान पर भी चौधरी चरण सिंह ने बहुत जोर दिया है। उनके अनुसार सबसे अधिक प्रभावशाली अभिप्रेरण खेतिहर को बीज, जल अथवा सिंचाई प्रबन्ध, खाद के प्रयोग के सम्बन्ध में अनुसन्धान से ही प्राप्त हो सकते हैं। अपने मुख्य मंत्रित्व काल में उन्होंने कृषि के अनुसधान कार्यों में विशेष रुचि दिखायी और कई जिलों में फलों और तरकारियों के अनुसधान फार्म उन्होंने पुनर्जीवित किये थे।

चौधरी चरणसिंह हमेशा इस बात पर जोर देते रहे हैं कि योजनाओं में गांवों और शहरों के बीच होने वाले विकास पर नजर रखी जाये और यह देखा जाये कि शहरी क्षेत्रों और ग्रामीण क्षेत्रों पर कुल व्यय का अनुपात क्या होता है। गाँवों को विकसित करने के लिए उनके अनुसार यह आवश्यक है कि न केवल कृषि कार्यों, वरन् सामूहिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करने के लिए शहरो की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों पर व्यय अधिक हो। इस सम्बन्ध में वह बहुत से आँकड़े जमा करते रहते हैं और समय आने पर उनका प्रयोग करते हैं। एक जगह उन्होंने लिखा है "कृषि व उद्योग, गाँव व शहरों के लिए किये गये आवंटनों

का अनुपात सही-सही निकालने के लिए यह जरूरी है कि बिजली, शिक्षा, चिकित्सा सुविधायें, सड़कों व परिवहन पर हुए कुल व्यय के बारे में यह जानकारी हो कि कितना गाँवों में व कितना शहरों में खर्च हुआ और उन आँकड़ों को कृषि व उद्योग के परिव्यय में जोड़ा जाये। लेकिन बिजली को छोड़कर इन क्षेत्रों में हुए निवेश के आँकड़े हमारे पास नहीं हैं। सन् १९७४–७५ में देश में पैदा की गयी कुल बिजली का १२.३१ प्रतिशत कृषि के उपयोग में आया, जबकि उद्योगों ने ६५.६९ प्रतिशत इस्तेमाल किया। "पश्चिमी देशों के बराबर पहुँचने" की हमारी आकांक्षा ने देश को कहाँ पहुँचा दिया है, इसके कुछ निश्चित उदाहरण यहाँ देना अनुपयुक्त नहीं होगा। हालाँकि चौथी योजना के अन्त में इस्पात का उत्पादन उतना ही था जितना उसके आरम्भ में–वर्तमान क्षमता से कम से कम ३० प्रतिशत कम–फिर भी सब ठीक-ठाक रहता, तो योजना आयोग सन् १९७४–७९ में वर्तमान इस्पात के कारखानों का विस्तार करने तथा नये कारखाने बनाने पर २,८०० करोड़ रुपये की चौंका देने वाली रकम खर्च करना न चाहता। उसने पाँचवीं योजना के अन्तर्गत विजयनगर कर्नाटक में ७५३ करोड़ रुपये की लागत के और विशाखापट्टनम्–आन्ध्र प्रदेश में ७४७ करोड़ रुपये की लागत के कारखानों के लिए 'प्रारम्भिक कार्य' की मद में ४५० करोड़ रुपये की रकम रखी थी। योजना आयोग जानता था कि इन दोनों कारखानों में ऊँची लागत का इस्पात तैयार होगा और ये कारखाने कभी अपना खर्च नहीं निकाल पायेंगे। सच तो यह है कि बन जाने पर इन कारखानों में उनकी क्षमता भर उत्पादन होता, तो भी उनको १२५ करोड़ रुपये प्रति वर्ष का हमेशा घाटा होता।

लेकिन जहाँ तक कृषि का सम्बन्ध है सार्वजनिक क्षेत्र के निवेशों से अधिक निजी क्षेत्र के निवेश महत्वपूर्ण हैं। कृषि के लिए निजी क्षेत्र के निवेश अधिकतर सहकारी संस्थाओं, पेशेवर महाजनों–रिश्तेदारों–व्यापारियों, कमीशन एजेंटो, जमींदारों, व्यावसायिक बैंकों आदि के जरिये आते हैं। आँकड़ों से मालूम होता है कि निजी क्षेत्र के कुल निवेशों में से दूसरी योजना में २०.२ प्रतिशत, तीसरी में १९.५ प्रतिशत और चौथी में १७.८ प्रतिशत कृषि के लिये आये; इसका मतलब है कि निक्षी क्षेत्र के निवेशों में भी कृषि की उपेक्षा की गयी।

किसानों को अपने उत्पादन का उचित मूल्य मिले, इसके लिए वह हमेशा प्रयत्नशील रहे हैं। उनके अनुसार यह दलील कि किसानों को अधिक कीमत देने से मुद्रास्फीति होगी, भ्रामक है। क्योंकि इस दलील में कारण और परिणाम में अन्तर न समझने की आम गलती निहित है। इस सम्बन्ध में सभी पक्षों अर्थात् उत्पादक, उपभोक्ता, व्यापारी और सरकार के हितों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने एक योजना का सुझाव दिया है जिसके अनुसार–

१, सिवाय उस स्थिति के जब बहुत ही कमी हो, खाद्यान्न का आयात बिलकुल न किया जाये।

२, सारे देश को खाद्यान्न के लिए एक ही क्षेत्र मान लिया जाये–दूसरे शब्दों में खाद्यान्न को देश के एक भाग से दूसरे भाग में लाने, ले जाने पर कोई प्रतिबन्ध न हो।

३. किसी एक वर्ष को आधार वर्ष मानकर उस वर्ष में खेतिहर अपने उत्पाद की जो कीमत पाता है और उस सामान की कीमत को लेकर जो वह खरीदता है, दोनों का अनुपात निकाला जाये और इस अनुपात से नापा जाये कि किसी वस्तु की कीमत उपभोक्ता तथा उत्पादक के लिए उचित है अथवा अनुचित। इस तरह निर्धारित दर को 'समता-कीमत' माना जाये।

४. मुख्य खाद्यान्नों की समता कीमत निर्धारित करके सरकार को यह घोषणा कर देनी चाहिए कि वह खाद्यान्न व्यापार में कोई हस्तक्षप तब तक नहीं करेगी, जब तक कि 'समता-कीमत' के ८५ प्रतिशत व ११५ प्रतिशत के बीच में व्यापार चलता है। ८५ प्रतिशत को 'न्यूनतम' कीमत व ११५ प्रतिशत को 'अधिकतम' कीमत कहना चाहिए।

५. जब किसी खाद्यान्न का भाव 'न्यूनतम' कीमत से नीचे गिरे तो सरकार सीधे-साधे उत्पादक से खाद्यान्न न्यूनतम कीमत पर खरीद लेगी।

६, जब भाव 'अधिकतम' कीमत से अधिक हो जाये, तो

सरकार को यह अधिकार होगा कि जिसके पास भी, चाहे वह जोतदार हो चाहे व्यापारी–खाद्यान्न का भण्डार होगा, उससे उसके परिवार की आवश्यकता भर छोड़कर पूरा गल्ला 'समता-कीमत' पर खरीद ले।

७. छोटे जोतदारों के द्वारा आपात-बिक्री को रोकने के लिए सभी विकास केन्द्रों में गोदाम बनाने चाहिए– एक विकास क्षेत्र के अन्तर्गत औसतन लगभग २६,००० एकड़ कृषि योग्य भूमि होनी चाहिए। इन गोदामों में छोटा जोतदार अपनी पैदावार रख दे और उसे तुरन्त ही न्यूनतम कीमत के आधार पर भुगतान कर दिया जाये। उसे यह अधिकार होगा कि बाद में वह अपना गल्ला गोदाम से लेकर अधिक दाम पर खुले बाजार में बेच दे, परन्तु उसे जो गोदाम से पहले कीमत मिली थी, वह मय ब्याज तथा गोदाम-भाड़े के वापस करनी होगी। लेकिन यदि खुले बाजार में भाव 'समता-कीमत' के ११५ प्रतिशत से अधिक बढ़ जाये, तो सरकार को अधिकार होगा कि उसका गल्ला 'समता-कीमत' पर ले ले और शेष का–अर्थात् 'समता-कीमत' व न्यूनतम कीमत के अन्तर का भुगतान कर दे।

फसलों की कीमतों को सहारा देने के पक्ष में जो दलीलें दी जाती हैं, उनसे चौधरी साहब सहमत नहीं हैं। कीमतों को रोकने की बात तो सोची जा सकती है, लेकिन आम तौर से कीमतें रोकने की कोई भी कारगर नीति भारत में चल नहीं सकती। कीमतों का सहारा देने का विचार पश्चिमी देशों से यहाँ आया है। वहाँ दोनों विश्व-युद्धों के बीच के वर्षों में यह नीति चलायी गयी थी और इससे कृषि की पैदावार को बहुत लाभ भी हुआ था। कुछ देशों में, विशेष रूप से अमेरिका में, शान्ति-काल में भी इस नीति के अनुसार काम होता रहा है, लेकिन वहाँ की अर्थ-व्यवस्था के सामने हमेशा ही अत्युत्पादन व आधिक्य की ऐसी जटिल समस्या बनी रहती है कि अमुक प्रकार के वित्तीय उपक्रमों से खेती की पैदावार की कीमतों को साध-कर रखा जाता है, ताकि खेतिहर को मुनाफा हो सके और वह उसे अपने देश के विशाल उद्योगों के उत्पाद खरीदने के लिए इस्तेमाल कर सके।

खेती की पैदावार की कीमतों को सहारा देने या उसकी न्यूनतम कीमत निर्धारित करने का अर्थ है राष्ट्रीय कोष से धन खेतिहर समुदाय की जेबों में हस्तान्तरित कर दिया जाना। यह नीति वहाँ तो चल सकती है, जहाँ खेतिहर समुदाय सारे देश की जनसंख्या का छोटा-सा भाग हो, जैसा कि इंगलैण्ड व अमेरिका में है, जहाँ खेतिहर कुल जनसंख्या का ३ या ४ प्रतिशत है। वहाँ तो शेष ९६ या ९७ प्रतिशत जनसंख्या पर कर लगाकर ऐसे ३ या ४ प्रतिशत लोगों को सहायता दी जा सकती है, जिनका जिन्दा रहना सारे राष्ट्र के हितों के लिए व भलाई के लिए आवश्यक है, लेकिन भारत में तो जोतदार व खेतिहर मजदूर मिलकर जनसंख्या का ७० प्रतिशत हैं। यहाँ उनको सहायता देने के लिए कीमतों को सहारा देने की नीति का अन्त में मतलब होगा, उन्हीं की जेब से निकालकर उनको दिया जाये, क्योंकि बाजार-भाव व न्यूनतम कीमत का जो अन्तर उनको राज्य की ओर से सहायता के रूप में दिया जायेगा वह ज्यादातर उन्हीं के पास से तो आयेगा।

जमीन एक स्थायी वस्तु है, वह बढ़ नहीं सकती। उस पर काम करने वाले लोगों की संख्या बढ़ सकती है, इसलिए यह आवश्यक है कि जमीन पर यदि आदमियों की फौज अधिक हो जाये, तो देहाती इलाकों में कुछ ऐसे छोटे-मोटे उद्योग, जो खेती से सम्बन्धित हों लगाये जायें और वे लोग जो खेती के कार्यों में भी संलग्न हैं, अपने बचत के समय में इन उद्योगों, जिन्हें कुटीर उद्योग की संज्ञा दी जाती है, के द्वारा अतिरिक्त धनोपार्जन कर सकें। यह व्यवस्था चौधरी चरणसिंह के लिए सबसे अधिक उपयोगी निदान है, उस समस्या का जो आज हमारे सामने है।

अपनी पुस्तक 'भारत की अर्थनीति' में उन्होंने औद्यो-गिक अभिरचना और गाँधीवादी-विचारधारा पर समानान्तर दृष्टिकोणों की तुलना की है। उन्होंने लिखा है कि 'सवाल यह है कि सन् १९४७ में राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद हमें किस प्रकार की औद्योगिक अभिरचना अपनानी चाहिए। इस सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण हैं—एक भारतीय जागरण के प्रेरक महात्मा गाँधी का और दूसरा स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का।

महात्मा गाँधी हमेशा देश में कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन

दिया करते थे। वह कहते थे कि भारत गाँवों में रहता है, शहरों में नहीं। गाँव वाले गरीब हैं, क्योंकि उनमें अधिकतर बेरोजगार हैं या अल्प-रोजगार की स्थिति में हैं। उनको उत्पादक रोजगार देना होगा, जिससे राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़े। वह कहते थे कि देश की वर्तमान स्थिति में जब मानव शक्ति असीम है और उसकी तुलना में भूमि व अन्य प्राकृतिक साधन कम हैं, तो कुटीर उद्योग ही, जिनके लिए थोड़ी ही या नाममात्र पूँजी चाहिए, रोजगार दे सकते हैं और हमारी अन्य आवश्यकताएँ पूरी कर सकते हैं—वह पश्चिमी देशों के तरह के मशीनों पर आधारित पूँजी-प्रधान उद्योग नहीं चाहते थे। वह कहते थे, उनसे बेरोजगारी बढ़ेगी. कुछ लोगों के हाथो में सम्पत्ति केन्द्रित हो जायगी और पूँजीवाद के सभी दुर्गुण हमारे देश में आ जायेंगे। उनके नाम के साथ चर्खा जुड़ गया। उनकी नजर में वह हर प्रकार की दस्तकारी व कुटीर उद्योगों का प्रतीक था।

उनको छोटी इकाइयों द्वारा विकेन्द्रित उत्पादन पसन्द था। उन्होंने एक बार कहा था : "एक केन्द्र पर बहुत ही पेचीदा मशीनों के जरिये कम से कम लोगों द्वारा उत्पादन के बजाय मैं पसन्द करूँगा कि लाखों लोगों द्वारा अपने-अपने घर में व्यक्तिगत रूप से उत्पादन हो।"

वह साफ-साफ चाहते थे कि भारत इस सिद्धान्त का अनुक्रमण करे कि भारी अथवा पूँजी-प्रधान-उद्योग केवल उन वस्तुओं के विनिर्माण के लिए लगाये जायें, जिनका दूसरे ढंग से उत्पादन नहीं हो सकता और बड़े पैमाने के मशीनों पर आधारित उद्योग केवल ऐसे कामों के लिए लगें जो आदमी के हाथों से घरेलू व छोटे-स्तर पर नहीं हो सकते। उनके विचार उनके ही शब्दों में सक्षेप में यह थे :

"यदि मैं सारे देश से अपने विचार मनवा सका, तो भावी सामाजिक-व्यवस्था का मुख्य आधार होगा चर्खा और वह सब जो चर्खे का मतलब है। इसमें हर वह चीज शामिल होगी, जिससे गाँव वालों का कल्याण हो। मेरी परिकल्पना के अनुसार दस्तकारी के साथ-साथ बिजली, पोत-निर्माण, लोहे के कारखाने—मशीनों का निर्माण व ऐसे ही काम भी चलेंगे। लेकिन पराश्रय का क्रम बदल जायेगा। अभी तक तो औद्योगीकरण ऐसा हुआ है कि गाँव व गाँव की दस्तकारी बर्बाद हो गये। भावी राज्य में औद्योगीकरण गाँवों व गाँवों की दस्तकारी को बढ़ायेगा। मैं यह समाजवादी विश्वास नहीं मानता हूँ कि जिन्दगी की आवश्कताओं के विकेन्द्रीयकरण से और केन्द्रित उद्योगों के राज्य द्वारा नियोजन व नियन्त्रण से सर्वसाधारण का कल्याण होगा।"

इसके विपरीत जवाहरलाल बड़े पैमाने के उद्योगों के पक्ष में थे। उनके दिमाग में जो तस्वीर थी वह राष्ट्रीय विकास परिषद में जनवरी सन् १९५६ में दिये गये उनके भाषण में नजर आती है :

"भारी मशीन निर्माण उद्योग को प्रोत्साहन देने पर अधिक बल दिया गया, क्योंकि यह कहा गया कि यह औद्योगिक वृद्धि का आधार है, आप यह नहीं करेंगे तो औद्योगिक वृद्धि में देरी हो जायेगी। एक यह विचार भी कभी-कभी रखा जाता है कि उपभोक्ता उद्योग बनाओ और उनके जरिये धीरे-धीरे धन बचाओ, कुछ और बनाओ जिससे कुछ रोजगार बढ़े। लेकिन मैं मानता हूँ कि नियोजन की दृष्टि से यह पूरी तरह त्याज्य सिद्धान्त है। उससे कुछ न कुछ यहाँ-वहाँ भला हो जायगा, मैं ब्यौरे में नहीं जाता, लेकिन यह तरीका नियोजित विकास का हर्गिज नहीं है : अगर आप चाहते हैं कि भारत औद्योगीकरण करे और आगे बढ़े, जैसा हम चाहते हैं, जो जरूरी भी है, तो आपको औद्योगीकरण करना होगा और यह ख्याल छोड़ना होगा कि छोटे-छोटे पुरानी तरह के कारखाने हो जिनमें बालों में लगाने वाला तेल और ऐसी ही चीजे बनती हों—इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि उपभोक्ता वस्तुएँ छोटी हैं या बड़ी। आपको जड़ तक, नींव तक जाना चाहिए और औद्योगिक-वृद्धि की अभिरचना का निर्माण करना चाहिए। इसलिए भारी उद्योग महत्व रखते हैं और किसी चीज का महत्व नहीं सिवाय उसके जो सन्तुलन के लिए जरूरी हो—और सन्तुलन भी महत्वपूर्ण है। हमें भारी मशीन-निर्माण उद्योगों और भारी उद्योगों के लिए योजना बनानी चाहिए, हमें ऐसे उद्योग चाहिए जो भारी मशीनें बना सकें और हमें यह काम जल्दी-जल्दी करने में लग जाना चाहिए क्योंकि इसमें समय लगता है।"

अप्रैल सन् १९५६ में भारत सरकार ने औद्योगिक नीति प्रस्ताव द्वारा यह तय कर लिया कि, 'समाजवादी ढंग के समाज' के निर्माण का उद्देश्य प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि आर्थिक वृद्धि की दर को तेज किया जाये, औद्योगीकरण की रफ्तार को बढ़ाया जाये, भारी व मशीन-निर्माण उद्योगों को विशेष रूप से विकसित किया जाये, 'सार्वजनिक क्षेत्र' का विस्तार किया जाये और विशाल व विकासशील सहकारी क्षेत्र बनाया जाये। यह प्रस्ताव दूसरी योजना में शामिल कर लिया गया।

२८ सितम्बर सन् १९५९ को चण्डीगढ़ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में दिये गये अपने भाषण में जवाहर लाल नेहरू ने अपनी स्थिति बिलकुल स्पष्ट कर दी। उन्होंने कहा : "एकीकृत योजना की प्रमुख बात है उत्पादन, न कि रोजगार। रोजगार महत्वपूर्ण है, लेकिन उत्पादन के सन्दर्भ में बिलकुल महत्वहीन है। और उत्पादन पहले से श्रेष्ठतर तकनीकों से ही बढ़ सकता है जिसका अर्थ है आधुनिक उपायों से ही बढ़ सकता है।"

नेहरू व उनके सलाहकारों ने यह मान लिया था कि लम्बे अर्से में औद्योगीकरण की रफ्तार व राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की सवृद्धि का दारोमदार इस बात पर है कि कोयला, बिजली, लोहा व इस्पात, भारी मशीनों, भारी रसायनिक कारखानों और आमतौर से भारी उद्योगों का उत्पादन बढ़ता रहे—अर्थात् पूँजी की रचना के लिए जरूरी उत्पादन बढ़े। यह स्वीकार किया गया कि भारी उद्योगों में बहुत अधिक लागत की जरूरत है और लाभप्रद होने के लिए लम्बी अवधि चाहिए, लेकिन यह दलील दी गयी कि बिना उनकी स्थापना के भारत न केवल उत्पादक वस्तुओं का बल्कि आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं का भी आयात करता रहेगा, जिससे देश के अन्दर की पूँजी का संचयन नहीं हो पायेगा, इसलिए भारी उद्योगों का विकास तेजी से होना जरूरी है। इसलिए पहली योजना के अलावा सभी पंचवर्षीय योजनाओं का आधारभूत सिद्धान्त यह रहा कि तेज संवृद्धि के लिए भारी उद्योग जरूरी हैं, उनके विस्तार से यह तय होगा कि किस रफ्तार से अर्थव्यवस्था स्वाव-लम्बी व स्व-उत्पादक होती है और उनके विस्तार से ही मध्यम व छोटे पैमाने के उद्योगों में जान आयेगी, वे बड़े उद्योगों के लिए कल-पुर्जे बनायेंगे व उनका माल खरीदेंगे और इस प्रकार अन्ततोगत्वा वृहत्तर रोजगार क्षमता प्रदान करेंगे। नियोजन की नीति यह थी कि देश का अति शीघ्र औद्योगीकरण किया जाये और इसका मतलब यह था कि भारी उद्योग को प्रथम स्थान दिया जाये।

भारी उद्योग को प्रथम स्थान देने की नीति के विरोध में चौधरी चरणसिंह गाँधी जी के रास्ते के अधिक निकट हैं, जिसके अनुसार देश का धीरे-धीरे धैर्यपूर्वक अपने ससाधनों के द्वारा नीचे से निर्माण किया जाना उचित माना गया। लेकिन एक बार विदेशी सहायता के दुष्चक्र में फँस जाने के बाद उससे निकलने में हमेशा कठिनाई होती है और इसी कठिनाई के कारण न केवल सारी विदेशी सहायता और पूँजी बड़े उद्योगों में लगी वरन् हमारे घरेलू संसाधन भी भारी उद्योग के विकास में लगा दिये गये, जिसका परिणाम यह हुआ कि शहरों और गाँवों के बीच खाई बढ़ती गयी और विकास भी एकांगी हो गया।

चौधरी चरणसिंह की अर्थ-नीति से अर्थशास्त्री असह-मत हो सकते हैं, उसमें कमियाँ खोजी जा सकती हैं। चौधरी चरणसिंह राजनीतिज्ञ हैं अर्थशास्त्री नहीं, लेकिन यह निर्विवाद सत्य है कि जनसाधारण की भलाई के लिए यदि चौधरी चरणसिंह को अर्थशास्त्र जैसे निरर्थक और शुष्क विषय पर भी अपना समय लगाना हो, तो वह पीछे नहीं रहते।

राष्ट्रीय नेतृत्व का आदर्श चरित्र

□ ज्वाला प्रसाद कुरील
संसद्-सदस्य

आपात्काल की काल-रात्रि के अवसान के पश्चात् जनतन्त्र का सुखद प्रभात भारतवासियों को प्राप्त हुआ। जनतांत्रिक प्रगति के अलमबरदार राष्ट्रों के समक्ष दीन-हीन भारत के साधारणजनों ने 'बुलेट' के विरुद्ध 'बैलेट' के प्रयोग से क्रान्ति लाकर दिखला दी। राष्ट्रपिता बापू ने जनता की ताकत के बल पर गौरांगों को देश से खदेड़कर दिखाया था, अपनों ने जनता की शक्ति की उपेक्षा की, जनता ने जिन्हें आँखों पर उठाया, वे उसके 'शासक' बन बैठे और शोषण का क्रम प्रारम्भ हुआ।

भारत के चरित्र, स्वभाव, गुण, जलवायु, वातावरण की उपेक्षा के परिणामस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में घुटन, कुण्ठा, आह और कराह का नाद तीव्र होता गया, बेकारों की पंक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती गयी। भारत के होनहार देश छोड़कर यूरोप और अमेरिका जाने लगे। सोवियत रूस की अन्तरिक्ष यात्रा की सफलता में एक भारतीय वैज्ञानिक का ही विशेष योगदान रहा है। अमेरिका में बस गये एक नोबल पुरस्कार विजेता डा० खुराना भारत के ही हैं। शायद कल भारतीय इतिहास में यह लिखा जायेगा कि आजादी के बाद भारत में कोई हस्ती जन्म नहीं ले सकी ? तब कौन यह समीक्षा करने बैठेगा कि दोष किसका था ?

अन्ततः जब रही-सही जनता की आजादी पर भी हमला हुआ, तब भारतीय जनता के सजग प्रहरी लोकनायक जय-प्रकाश का अभ्युदय हुआ। परन्तु यहीं पर हम भारत की भूमि की हृदय-स्थली उत्तर प्रदेश में जन्मे चौधरी चरण सिंह का उल्लेख किये बिना नहीं रह सकेंगे। सन् १९७६ में कानपुर आर्यनगर धर्मशाला में चौधरी जी का सम्बोधन। उनके शब्द उनके हृदय से निस्सृत हो रहे थे ! कितनी पीड़ा थी, कितनी तड़पन थी और जन-अधिकारों के लिए बलिदान होने की कितनी तीव्रता थी।

प्रयत्न सफल हुआ। जनता ने उन्हें हटाया, जिन्होंने उसकी आजादी छीनी थी। उन्हें गद्दी पर बिठाया, जो कुछ करना चाहते थे, कुछ कर दिखाना चाहते थे। यह सत्य है कि जनता सरकार को अनेक धाराओं को समाहित करना पड़ा। परन्तु जैसे अनेक धारायें समाहित होकर विशाल समुद्र का रूप ले लेती हैं, वैसे ही जनता पार्टी को भी अनेक दलों के समागम के परिणामस्वरूप एक अत्यन्त शक्तिशाली संस्था के रूप में उभरना है।

यह देश का दुर्भाग्य था कि आजादी के बाद भारत की राजनीति सत्तामुखी हो गयी। लोग विधायक, संसद सदस्य केवल इसलिये बने कि उन्हें सत्ता का सुख मिल सके, जबकि उनका लक्ष्य जनसेवा का होना चाहिए था। शासन के लोभ ने घृणित राजनीति को जन्म दिया और सत्ता एक हाथ में केन्द्रित हो गयी। दुम हिलाने वाले राजनीतिज्ञों ने स्वतन्त्र भारत की महिमामयी तस्वीर को स्वार्थी परचम की तरह धूल में मिला दिया।

आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। राष्ट्र ने फिर एक बार गाँधी के पदचिन्हों का अनुसरण करने की कसम खाई है।

महात्मा गाँधी के आधारभूत सिद्धान्त 'आत्मनिर्भरता' को अंगीकार किये जाने की आज महती आवश्यकता है। आत्मनिर्भरता का मूलमन्त्र है—उपलब्ध साधनों का सदुपयोग। यह देश खेतिहर है। खेती की उन्नति ही इस देश को चमका सकती है। हाँ; खेती की दृष्टि और नीति में अन्तर लाया जाना चाहिए। कृषि एक बहुत बड़ा उद्योग है, परन्तु अभी अपने देश में इसे उद्योग के रूप में मान्यता नहीं मिल पायी है। धूल, धूम्र और ध्वनि के जनक कल-कारखानों की तुलना में लहलहाते खेतों एवं फल-फूलों की मीठी-सोंधी सुगन्ध भारत देश को अधिक खुशहाल कर सकती है। और यहाँ की धरती सुजला सुफला शस्य-श्यामला होने का गौरव पुनः प्राप्त कर सकती है।

धरती का कोना-कोना हरित क्रान्ति का आह्वान करे और सम्पूर्ण देश कृषि विकास में तत्परता से जुटे इस सहज कल्पना में चौधरी साहब डूबे हुए हैं।

दलितों के नेता बाबू जगजीवनराम जब भारत के कृषि मन्त्री थे, तब उन्होंने कृषि-क्रान्ति का आह्वान किया था और कहा था कि 'भारत की सभी समस्यायें 'कृषि' के द्वारा ही सुलझ सकती हैं।' राष्ट्रपिता बापू ने भी कहा था कि भारत का राष्ट्रपिता एक किसान को होना चाहिए। वे जानते थे कि किसान के आगे आने से ही कृषि आगे आयेगी और कृषि के आगे आने से ही देश आगे आयेगा। बड़े-बड़े उद्योगों के विरोध की कोई बात नही है। हाँ, कृषि-प्रधान देश में पहले बात खेती की है, तब बड़े उद्योगों की है।

एक राष्ट्र के जीवन में दस-पाँच वर्षों का कोई मूल्य नहीं होता। फिर भी एक वर्ष में ही मौलिक अधिकारों की वापसी, प्रेस की स्वाधीनता, मीसा की समाप्ति, न्याय की पुनःस्थापना, भयरहित वातावरण का सृजन, कृषिपरक योजना का प्रारम्भ, आयोजना में मौलिक परिवर्तन का विचार, विदेशों में भारतीय गौरव की स्थापना, पड़ोसी देशों का आशका रहित होना आदि अनेक बाते हैं, जिनका उल्लेख किया जा सकता है।

एक ओर देश के समुचित विकास के लिए महत्त्वपूर्ण योजनायें हमारे सामने हैं। हमारे वरिष्ठ नेता अहर्निश तत्परता से देश को उबारने में लगे हैं, दूसरी ओर सत्ता से हटे हुए निहित-स्वार्थी तत्त्व तरह-तरह के हथकण्डे अपना रहे हैं और शांति-व्यवस्था भंग करने की हर तरह कोशिश कर रहे हैं। कल अंग्रेजों ने हिन्दू-मुसलमान कहकर भारतीय समाज में एक घृणित विभाजन रेखा खींची थी और आज यह काँग्रेस के बन्दे हरिजनों को वैतरणी की बछिया बनाकर पूँछ पकड़कर पार जाना चाहते हैं। जानबूझकर यह समाज में एक नयी विभाजन रेखा खींच रहे हैं—जो वर्ग-संघर्ष को जन्म देगी और व्यवस्थाओं को छिन्न-विछिन्न करेगी।

कोई इनसे पूछे तीस वर्ष तक आप क्या करते रहे? सार्वभौम सत्ता हथियाए बैठे रहे। फिर क्यों नहीं सामाजिक विषमतायें दूर कर सके? झूठे नारों पर, भविष्य के वादों पर, आज समाज का कोई भी वर्ग रीझने वाला नहीं है।

सामाजिक-बराबरी राष्ट्रीय एकता का आधार है। इसी के बलबूते पर राष्ट्र मजबूत और प्रजाजन सुख-समृद्धि की ओर अग्रसर होते हैं। किसी भी प्रकार की जातिगत-विषमता और भेदभाव तथा मनोमालिन्य बढ़ाने वाली प्रवृत्तियाँ राष्ट्रीय एकता के लिए खुली चुनौती हैं। हमारे संविधान ने अस्पृश्यता को कानून-विरुद्ध घोषित किया है। साथ ही सरकार बराबर इस बात का ध्यान रखती है कि समाज के अल्पसंख्यक वर्गों को अपने धर्म का पालन करने, भाषा और साहित्य की श्रीवृद्धि करने और मन-मुताबिक शिक्षा ग्रहण करने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता रहे। जातीय और सामाजिक भेदभाव को प्रश्रय देना मानवता का अपमान करना है, कानून की अवहेलना करना है।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हमारे देश की हिन्दू जनता का एक बहुत बड़ा हिस्सा आज भी अन्धविश्वास, छुआछूत और पोप-लीलाओं में यकीन करता है, उनके अनुसार आचरण भी करता है। मन्दिर, पूजाग्रहों में उपासना करना और धर्मग्रन्थों के अनुसार चलना बुरी बात नहीं है। हर देश में कोई न कोई पूजा-उपासना का विधान और धर्मपालन की विधि है। साम्यवादी देशों में भी लोग अपने-अपने धर्म का पालन कर सकते हैं। ऐसा कहा जाता है। लेकिन हमारे देश में हिन्दू समाज के ही एक

आवश्यक और उपयोगी अंग को किस प्रकार समाज में अप्रतिष्ठित किया जाता रहा है, यह अस्पृश्यों के लिए ही नहीं वरन् ऊँची कही जाने वाली जातियों के लिए शर्म की बात है और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के लिए एक कलंक के समान है।

इन सब बातों के कारण कई प्रश्न उठते हैं—

(१) क्या इस सब का मूल कारण यह है कि राजनीतिक सत्ता, अर्थतन्त्र और अन्य उत्पादन के साधनों पर उच्चवर्गीय लोगों का एकाधिकार होने के कारण दबे और पिछड़े लोग उभर नहीं पा रहे हैं ?

(२) क्या छुआछूत की समस्या मात्र–सतही है और गरीबी एवं शैक्षिक पिछड़ापन ही प्रमुख कारण हैं ?

(३) क्या 'संरक्षण' की अवधि बढ़ाते रहने से ही छुआछूत की भावना और विचारधारा समाज से नहीं मिट पा रही है ?

(४) क्या 'आर्थिक संरक्षण' प्रदान करने से ये वर्ग तरक्की कर पायेंगे ? आदि–आदि।

आज इन प्रश्नों पर बड़ी गहराई से सोचने की आवश्यकता है। निस्सन्देह देश का सुशिक्षित एवं युवा–नेतृत्व–वर्ग दबे पिछड़े लोगों को सदाशयता से ऊँचा उठाने का प्रयत्न कर रहा है। वैज्ञानिक और विचारक एक स्वर से उनकी बहुमुखी प्रगति के लिए कृत संकल्प हैं। बाबा साहब अम्बेदकर और महात्मा गाँधी के बाद जनता पार्टी के सभी प्रमुख नेता इस समाज को बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए जो भूमिका अदा कर रहे हैं, वह शुभ–भविष्य की द्योतक है।

लेकिन एक बात हमें नहीं भूलनी चाहिए कि जब तक परिगणित हरिजन पिछड़े वर्गों के लोग स्वयं ऊँच–नीच का भेदभाव नहीं भुलायेंगे, उनका कल्याण और उत्थान नहीं होने का। एक ब्राह्मण हरिजन के घर में रोटी–बेटी का सम्बन्ध करे और एक बनिया या ठाकुर, चमार या पासी कोली के यहाँ रिश्ता जोड़े। यह आशा करने से पहले हरिजन चमार–पासी, खटिक–कोली आदि शोषित जातियों के संसद एवं विधानसभाई सदस्यों और अधिकारियों को आपस में रोटी-बेटी के सम्बन्धों की शुरूआत करके एक नये युग का सूत्रपात करना चाहिए। इससे न केवल छुआछूत ही मिटेगी वरन् राष्ट्रीय एकता का पक्ष भी प्रबल होगा। जातीय और सामाजिक सद्भावना और एकता बढ़ेगी। कुछ राज्य सरकारों ने इस दिशा में आर्थिक मदद और व्यावसायिक प्रमुखता का प्राविधान किया है।

दरअसल, एक पढ़ा–लिखा ठाकुर, एक शिक्षित ब्राह्मण या वैश्य इतनी ऊँच–नीच नहीं बरतेगा, जितनी कि एक अपढ़ नाई, धोबी, कहार, माली बरतता है। यह अन्ध मान्यतायें मिटानी होंगी। समाज–सेवकों और प्राइमरी से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के अध्यापक प्राचार्यों का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वे इस प्रकार के भेदभाव मिटाने में सहायक बनें।

इस सन्दर्भ में इस एक तथ्य की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है कि मूल समस्या का समाधान हरिजनों तथा अन्य पिछड़ी जातियों के लोगों को नौकरी, शिक्षा, आवास, प्रशिक्षण आदि की कुछ सुविधायें दे देने मात्र से ही नहीं हो सकेगा—मानना होगा कि अभी तक ऐसा ही होता चला आ रहा है और उसका परिणाम भी सामने है। आवश्यकता है पिछड़े लोगों के अस्तित्व की स्थिति में आमूल परिवर्तन करने की—समाज के नवनिर्माण की। यह तभी हो सकता है, जब मध्ययुगीन सामन्ती आधार को निर्मूल कर प्रत्येक व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आधारित लोकतन्त्रीय समाज पुनः संगठित हो।

इस दिशा में देश को चौधरी साहब से अनन्त आशायें हैं। अपने उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्रित्व काल में उनके द्वारा समाज में व्याप्त इस विरोधाभास से निपटने के लिए कई प्रभावशाली कार्य किये गये थे। इन्सान–इन्सान के नाम से जाना जाये; जाति–पाँति के नाम से नहीं। अतः आपने संस्थाओं से जाति सूचक नामों को निकलवाकर उन्हें जाति-भेदों से ऊपर उठकर काम करने की प्रेरणा दी थी। आज वह सम्पूर्ण देश की अनेकानेक समस्याओं से जूझ रहे हैं। हमें पूर्ण विश्वास है, इस समस्या का निदान खोजने में भी वह समर्थ होंगे और देश फिर एक बार वैदिक युग की ओर बढ़ चलेगा, जहाँ हर मनुष्य–मनुष्य होने का गौरव प्राप्त कर सकेगा।

कठोर-कोमल

□ शिवनन्दनसिंह
संसद सदस्य

स्वनामधन्य चौधरी चरणसिंह राष्ट्र की ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की एक महानतम् विभूतियों में से हैं। उनके विशिष्ट गुणों के सम्बन्ध में एक दिन की यह बात स्मरण हो आयी जब श्री बंसीलाल भूतपूर्व मुख्यमंत्री हरियाणा, उनके विधान सभाई क्षेत्र छपरौली में सन् १९७४ में पहुँचे थे, चुनाव प्रचार सरगर्मी में था, छपरौली क्षेत्र के एक पुल के पास १५२० नवजवान लड़के जिनमें अधिकांश स्नातकोत्तर विद्यार्थी और कुछ स्नातकोत्तर परीक्षा पास कर चुके थे, इकट्ठे होकर बहस मुबाहिसा कर रहे थे। श्री बंसीलाल जी तामझाम के साथ चुनाव प्रचार को आये हुए थे; उन्होने पुल के पास गाड़ी रुकवा दी। चुनाव की बात छिड़ गयी, उन्होने हर प्रकार से नवजवानों को समझाया और कहा कि हम आपको तुरन्त नौकरी दे सकते हैं।

मगर नव-युवकों ने चौधरी चरणसिंह के विरुद्ध प्रचार करने तथा वोट देने से आद्योपान्त इन्कार ही किया, अन्त में श्री बंशीलाल जी ने झल्लाकर कहा कि आखिर चौधरी तुमको क्या देता है, जो तुम उसका समर्थन करते हो ? चौधरी विरोधी पार्टी में है वह तुमको क्या दे सकता है ? एक विद्यार्थी ने उत्तर दिया कि, श्रीमान् ईश्वर हमको क्या देता है, जो हम उसकी पूजा करते हैं। यह बात सुनकर मुझे हरिऔध जी द्वारा रचित निम्न छन्द स्मरण हो आया, जो उन्होंने श्री कृष्ण के सम्बन्ध में लिखा है :—

प्रसून योंही न मिलिन्द वृन्द को,
विमोहता औ' करता प्रलुब्ध है।
वरंच प्यारा उसका सुगन्ध ही,
उसे बनाता बहु प्रीति पात्र है।
अनेक ऐसे गुण हैं बृजेन्द्र में,
स्वभाव उनका ऐसा अनूप है।
निबद्ध सी है उनमें नितान्त ही,
ब्रजानुरागी जन की विमुग्धता।

फूल भौरों के समूह को अकारण ही अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर लेता, बल्कि उसमें ऐसी सुगन्ध है, जिसके कारण वह बहुतों को अच्छा लगता है। श्री कृष्ण चन्द्र में अनेक ऐसे गुण हैं तथा उनका स्वभाव ऐसा अनुपम है, जिसके कारण बृज के लोग उनके प्रति सम्मोहित हैं।

चौधरी साहब में वास्तव में ऐसे अनेक गुण हैं, जिनके कारण वे भारत की जनता के प्रिय हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वह सम्प्रति भारत के लोकप्रिय नेता हैं, उनके विशिष्ट गुणों का वर्णन इस छोटे से लेख में नहीं किया जा सकता, मगर कुछेक गुणों का सोदाहरण उल्लेख कर रहा हूँ।

मृदूनि कुसमानि वज्रादपि कठोरानि

चौधरी चरणसिंह ऊपर से बहुत ही गम्भीर मालूम पड़ते हैं, वे सामान्यतः कम हँसते एवम् मुस्कराते हैं, अधिकांश गम्भीर चिन्तन में व्यस्त रहते हैं तथा उनकी मुद्रा गम्भीर रहती है, मगर उनका हृदय मानवीय प्रेम का सागर है। एक दिन की बात है—इलाहाबाद हाईकोर्ट के वरिष्ठ

अभिवक्ता श्री रामकृष्ण शुक्ल मुझसे बतला रहे थे। उनका मामला विधि-मन्त्रालय उत्तर प्रदेश में विचाराधीन है।

चौधरी साहब ने ही उनको सरकारी अभिवक्ता उच्च न्यायालय इलाहाबाद में बनाया था। श्री शुक्ल ने बताया कि चौधरी साहब से जब उनकी मुलाकात हुई तो शुक्ल जी इतने प्रसन्न एवम् सन्तुष्ट थे कि उन्होंने कहा कि चौधरी साहब तो इतनी सहृदयता से उनसे मिले कि मैं बयान नहीं कर सकता; उन्होंने कहा कि चौधरी साहब के बारे में लोग गलत बात करते हैं कि वे मिलते कम हैं। सही बात तो यह है कि जिससे वह एक बार मिल लें तथा बात कर लें वह सारे जीवन उनका दास हो जाता है। चौधरी साहब सबकी व्यथा को समझते हैं तथा मानवीय आधार पर उसकी सहायता तुरन्त करते हैं, उनमें किसी प्रकार की कोई नीरसता नहीं है, वे प्रेम के अगाध समुद्र हैं। इसमें सन्देह नहीं कि चौधरी साहब दृढ़ प्रतिज्ञ हैं तथा बड़े से बड़े निर्णय लेने में नहीं हिचकिचाते तथा वज्र से भी अधिक कठोर हैं। नेहरू युग की बात है, नेहरू जी के उस वर्चस्व में चाटुकारिता का तो यह आलम था कि :—

नेहरू दिन को रात कहें,
तो हम तारे चमका देंगे।

मगर चौधरी साहब अपने विचारों के पक्के हैं तथा जिस बात को सही मानते हैं उसको दृढ़तापूर्वक स्पष्ट रूप से कहते हैं। सहकारी खेती के सम्बन्ध में उनको भलीभाँति ज्ञात था कि जवाहरलाल नेहरू सहकारी खेती के समर्थक हैं तथा उसे लागू करना चाहते हैं।

यह चौधरी चरणसिंह का ही साहस था कि उन्होंने पण्डित नेहरू का कोप-भाजन बनना स्वीकार किया मगर लोकहित के लिए सहकारी खेती का जमकर खुले अधिवेशन में विरोध किया तथा घण्टों आँकड़ों के साथ वक्तव्य दिया, जिससे कि सारी सभा स्तंभित एवम् चकित रह गयी।

चौधरी चरणसिंह जब किसी विषय पर सोचकर कोई अभिमत बना लेते हैं, तो अडिग रहते हैं फिर किसी की परवाह नहीं करते।

चौधरी साहब के निर्णय मानवीय एवम् सहृदयता के ऊपर आधारित रहते हैं। सन् १९६७ में जब वे पहली बार उत्तर प्रदेश के विशाल प्रान्त के मुख्य मन्त्री पद पर आसीन हुए तो उन्होंने पुलिस के जवानों की कठिनाइयों का एहसास किया। उन्होंने यह समझा कि जब पुलिस के जवान डकैतों से मुठभेड़ करते हुए मारे जाते हैं, तो कुछ ही रुपया सरकार उनको दे देती है और अपने कर्तव्य की इतश्री समझती है। चौधरी साहब ने बड़ी सहृदयतापूर्वक पुलिस के जवानों तथा अधिकारियों की कठिनाइयों को समझा और यह आदेश दिया कि जो जवान ड्यूटी पर वीरगति को प्राप्त होगा उसके आश्रितों को पूरा वेतन जीवन पर्यन्त दिया जायेगा मानों वह सरकारी सेवा में ही रत है। इससे पुलिस के जवानों का हौसला बढ़ा तथा उनको यह आशा हुई कि यदि वह मारे भी जायेंगे, तो उनकी सन्तानें दर-दर की ठोकर नहीं खायेंगी, बल्कि उनको पूरा आर्थिक सहारा उसी प्रकार रहेगा मानों कि वह जिन्दा हैं।

चौधरी साहब की विशेषताओं की चर्चा करते समय उनकी सहधर्मिणी गायत्री देवी को नहीं भुलाया जा सकता, जो उनके साथ छाया की तरह रहती हैं तथा उनको उनके कठिन राजनीतिक जीवन में सहयोग करती हैं। सम्प्रति जब चौधरी साहब गृहमन्त्री पद का भार सम्भाले हैं तथा अधिक व्यस्त हैं तब श्रीमती गायत्री देवी लोगों से मिलकर उनको सन्तोष देती हैं। लोगों की बातें सुनना, उनको सहृदयता से समझाना, धीरज बँधाना, उनका प्रमुख काम बन गया है।

चौधरी दंपती भारत के लिए वरदान हैं। भारत की जनता इस दंपती के ऊपर न्यौछावर है तथा कामना करती है कि यह जुगल-जोड़ी शतायु हो तथा स्वस्थ रहे एवं भारत की जनता का अपने कुशल एवं सक्षम नेतृत्व से पथ-प्रदर्शित करती रहे।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

□ श्रीमती माया शुक्ल

जनता सरकार का उदय कुछ प्रश्नों के उत्तर के रूप में हुआ था। यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया थी और तानाशाही के विरुद्ध प्रजातान्त्रिक परम्पराओं को पुनः स्थापित करने की बात थी। मूल रूप से हमारी वैचारिक स्पष्टता इसके उदय या जन्म के विषय में स्थूल से सूक्ष्म की ओर रही है। जनता सरकार कहाँ से उतर कर इस राजनीतिक पृष्ठभूमि पर आयी आदि अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर "तमसो मा ज्योतिर्गमय" से स्वतः प्राप्त हो जाता है। आपात काल की अंधकार ग्रस्त विषमताओं के भीतर से भारतीय स्वतन्त्रता के अभ्युदय का द्वितीय पर्व एक मंगलमय मुहूर्त बनकर उदित हुआ। यह अन्धकार से उबरने की एक प्रक्रिया थी जिसने नवीन आशाओं और अभिलाषाओं की मानसिकता का सृजन किया। निश्चयहीन जन-मन की कठिन उपेक्षाओं के पश्चात् जनता, जनता सरकार से अनेक अपेक्षायें कर रही है। उत्पीड़ित मानवता शीघ्रातिशीघ्र अपने दुःखों की दवा चाहती है।

गहन विषाद, गहन अंधेरे के भीतर से सुख का आलोक अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। जनता सरकार के नक्षत्र मण्डल में भाग्य-निर्णायक-शक्ति वाले अनेक प्रकाशक ग्रह प्रगतिशील हैं। गाँधीवादी नीति के पोषक श्री मोरार जी भाई, कृषकों और गरीबों की आवाज श्री चौधरी चरण सिंह जी, बेकस और दलितों के नेता बाबू जगजीवनराम एवं भारतीय संस्कृति के रक्षक श्री अटल बिहारी बाजपेयी।

जनता पार्टी विविध शक्ति-धाराओं का ऐसा पवित्र संगम है, जो जन-मन-गण का मुक्ति-प्रद-तीर्थराज सिद्ध हो सकता है।' भारत की साँस्कृतिक सम्पदा, कृषकों के प्रति गहरी योजना मूलक सहानुभूति, प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था के प्रति महती निष्ठा एवं विपन्न उपेक्षित, दलित वर्ग के प्रति उद्धार का दृढ़ संकल्प, श्रम-जीवियों की क्रांति का केन्द्रित शक्ति पुंज बन कर सहसा प्रकट हुआ है।

केन्द्रीय सरकार के मन्त्रिमण्डल के वरिष्ठतम सदस्य माननीय श्री चरणसिंह जी ने गरीबी और बेरोजगारी की मानवीय समस्याओं के समाधान के लिए गाँधीवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। उनका सुझाव है कि प्राथमिकता कृषि को दी जानी चाहिये। साथ ही साथ कुटीर उद्योगों, हस्त शिल्पों. लघु उद्योग धन्धों और अन्त में बड़े पैमाने पर आधारित उद्योग धन्धों को महत्व देना चाहिये। जब तक कृषि का आधुनिकीकरण नहीं होगा, उत्पादन में वृद्धि की ओर ध्यान न दिया जायेगा, तब तक भारतीयों के रहन-सहन के स्तर में सुधार नहीं किया जा सकता। भारत एक ग्राम प्रधान देश है। अधिकाँश भारतीय ग्रामीण परिवेश से अधिक है, इन्हीं के द्वारा केन्द्र और राज्य की सरकारों के भाग्य का निर्णय होता है। यदि भारतीय लोकतन्त्र को सुदृढ़ और स्थायी आधार भूमि प्रदान करनी है, यदि वास्तविक अर्थों में जनता का शासन प्रतिष्ठित करना है, यदि यथार्थ रूप में स्वस्थ जनतांत्रिक परम्पराओं का निर्माण करना है, तो हमें भारतीय ग्रामीण कृषकों को अनेकानेक सुविधायें प्रदान करनी होंगी। उनके गुण-दोषों का विश्लेषण करना होगा और उन्हें सम्यक् दिशा प्रदान

करनी होगी। पिछले तीस वर्षों के दौरान बड़े उद्योग-धन्धों को अधिकाधिक महत्व दिया गया जिसका अन्ततोगत्वा परिणाम बढ़ती हुई बेरोजगारी के रूप में जनता सरकार के समक्ष आया। पूँजी कुछ व्यक्तियों के हाथ में सिमट कर रह गयी। परिणामतः अमीर और अमीर होता गया और गरीब और गरीब।

इतिहास साक्षी है कि कुछ विकसित देशों की शान्ति को बड़े पैमाने के उद्योग-धन्धों ने ही नष्ट किया। वर्तमान समय में आर्थिक-नीति में परिवर्तन युग की पुकार है। जनता सरकार द्वारा स्वीकृत आर्थिक नीति पर स्पष्ट रूप से श्री चरणसिंह के आर्थिक दृष्टिकोण की गहरी छाप है। श्री चरणसिंह के शब्दों में "जब तक यह देश आर्थिक विकास के वर्तमान ढांचे से बँधा रहता है, जिसके अन्तर्गत शहरों के विशिष्ट वर्गों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये या नाम मात्र की कीमत पर निर्यात के लिए उत्पादन करने वाले पूँजी बहुल उद्योगों का निर्माण होता है, तब तक न सिर्फ बेरोजगारी बढ़ती रहेगी और पूँजी कुछ एक हाथों में केन्द्रित होती रहेगी, वरन् सम्पन्न देशो के बन्धन में अधिक से अधिक जकड़े जाने का खतरा भी बना रहेगा।" इसी समस्या का समाधान करने के लिये जनता सरकार ने गाँधी जी के सहभागिता (ट्रस्टीशिप) सिद्धान्त को अपनाया है, जिससे यह प्रमाणित होता है कि जनता सरकार विकेन्द्रीकृत कार्य-पद्धति में विश्वास रखती है। भारत की जनता, जनता सरकार से यह अपेक्षाये करती है कि नियोजन का दृष्टिकोण बड़ा यथार्थवादी हो। भारतीय ज्वलन्त समस्याओ का समाधान करने के लिये यदि पंचवर्षीय योजना के स्थान पर कृषि-योजना को महत्व दिया जाये, तो आर्थिक ढाँचे की तुला को समतौल बनाया जा सकता है। गाँधीवादी नीति क अनुसार भी सामाजिक आर्थिक ढाँचे में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता, जब तक बुनियादी हल न ढूँढ लिया जाये। गाँधी और नेहरू की विचारधारा में मूल अन्तर यही था कि गाँधी जी देश की सम्पूर्ण आत्मा को प्रतिवद्ध करने की बात सोचते थे, जब कि नेहरू 'नागर उत्कृष्ट सभ्यता' से प्रभावित विचारधारा के दृष्टिकोण से देश के आर्थिक-ढाँचे को सन्तुलित करना चाहते थे, किन्तु जनता सरकार से यह आशा है कि वह समग्र विकास का दृष्टिकोण अपनाये तभी देश प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकेगा।

प्रजातन्त्र-लोकतन्त्र अथवा जनतन्त्र वर्तमान परिवेश में चर्चा का विषय बना हुआ है। संसार के देदीप्यमान नक्षत्रों में लोकतन्त्र की गणना हो रही है। पूर्वी और पश्चिमी अनेक देशों में लोकतन्त्र को महत्व दिया गया है। भारतीय राज नेता भी लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली से इतना अधिक प्रभावित थे कि देश के स्वतन्त्र होने के बाद उन्होंने लोकतंत्र के आधार पर अपने नये संविधान का निर्माण किया; अतः संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की गयी। वयस्क मताधिकार की व्यवस्था कर जन-प्रतिनिधियों में निर्वाचन की परम्परा चालू की गयी। जन प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव की व्यवस्था की गयी। लोकतंत्र के सिद्धान्तों के अनुसार बहुमत का शासन स्थापित हुआ। किन्तु आपात स्थिति में, राजनीतिक दलों में गतिशील हो गयी धर्म-रूढ़ियों में आबद्ध हो गया समाज विषमता में मूर्छित हो गया। सत्यता, नैतिकता, सदाचार आदि का स्थान स्वार्थपरता, पदलोलुपता तथा शक्तिवादिता ने ले लिया; एकता, सहयोग, सामंजस्य की भावना कम होने लगी। किसी सिद्धान्त अथवा आदर्श में आस्था, निष्ठा न रख कर अवसरवादिता की नीति अपनायी जाने लगी। तभी भारत की जनता के सामने यह प्रश्न उठा कि महात्मा गाँधी ने अपने भगीरथ-प्रयत्नों से १९४७ में जिन दासता की श्रँखलाओं से भारतीयों को मुक्त कराया था, आज पुनः हमारी आत्माओं को उन्हीं श्रखलाओं से आबद्ध किया जा रहा है। अतः देश की जनता ने नयी स्फूर्ति फूँकने का कार्य समग्र क्रांति के रूप में लोक नायक जयप्रकाश जी ने किया, जिससे भारत में लोकतंत्र की वापसी हो सके। अतः वर्तमान जनता सरकार से जनता यह अपेक्षा करती है कि जनता के निर्णय को अंतिम रूप दिया जाये। प्रशासन में सुधार लाने के लिये पुलिस के अत्याचारी रूप का अंत हो। नौकरशाही का प्रतिक्रियावादी रूप जो सरकार और जनता के बीच खाई पैदा करता है, उसका अंत कर जनता "जहाँगीरी इंसाफ" चाहती है।

आधुनिक समाज एक आत्यन्तिक रुग्णावस्था से पीड़ित एवं जर्जरित है। मानव समाज इस प्रकार की दयनीय अवस्था तक पहुँच चुका है कि आज उसके सामने एक ही

समस्या है-- इस असंतुलित अवस्था से संतुलित अवस्था लाने का, अस्वास्थ्यकर स्थिति को स्वास्थ्यकर बनाने का तथा हिंसा और शोषण जैसी विनाशकारी प्रवृत्तियों को उन्मूलित करके उनके स्थान पर समता और भ्रातत्व की निर्माणकारी प्रवृत्तियों की स्थापना हेतु जुट जाने का। ऐसा करके ही हम लोक कल्याणकारी राज्य की कल्पना कर सकते हैं। समाज में गाँधीवादी मूल्यों के साथ भारतीय दृष्टिकोण का जो नैतिक पतन हुआ है उसके प्रमुख कारण नगरीकरण, पाश्चात्य मूल्यों और परम्पराओं का बाहुल्य रहा है। विद्यालयों में भी नैतिक-शिक्षा का अभाव इसका कारण बना हुआ है। अतः नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिये सर्व-धर्म-समभाव के सिद्धान्त को अपनाना होगा। गाँधी जी ने लिखा है "जैसे मनुष्य के मस्तिष्क के विकास के लिये माँ का दूध वैसे सत्य अहिंसा प्रेम के त्रिगुणात्मक तत्व ही जीवन की संरचना करते हैं! अनेक अभाव में ध्वंस का अंधकार विश्व-जीवन को निगल जायेगा। इस मानव-नियति का साक्षात्कार समाज के असीम विस्तार में ही नहीं अनुभूति की अतल गहराई में है। अतः समाज को सुव्यवस्थित बनाने के लिये जनता सरकार को नैतिक मूल्यों के महत्त्व को समझना होगा। आलोक की कोई प्रतिमा नहीं गढ़ी जाती, वह हमारी दृष्टि में ही स्थिर रहती है, उसको समझने के लिये अन्तरदृष्टि रखना चाहिये। यह जटिलतायें उन लोगों की समझ में नहीं आ सकती, जो पूर्व निर्धारित दृष्टिकोणों एवं विश्लेषणात्मक ढाँचे से हटकर सोचने में असमर्थ हैं। समाज की अपेक्षायें और आंकाक्षायें बहुत जटिल हैं! भारत की जनता शीघ्र ही सत्तारूढ़ दल द्वारा दिये गये आश्वासनों को साकार देखना चाहती है। समाज ने जनता सरकार को सत्ता का सिंहासन इस अपेक्षा से सौंपा कि वह शीघ्र ही सुख-समृद्धिपूर्ण स्वावलम्बी राष्ट्र का निर्माण करेगी। अपने इस एक वर्षीय काल खण्ड में जनता सरकार ने जो कुछ किया है वह मूर्त्त है। समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता, प्रचार-साधनों की निष्पक्षता और न्यायालयी गरिमा की पुनर्प्रतिष्ठा आदि ऐसे विषय हैं, जो जन-जीवन से सीधे जुड़े हैं। यदि मूर्त्त और अमूर्त्त उपलब्धियों पर चिन्तन किया जाये, तो निष्कर्ष यह निकलता है कि क्या रोटी और उससे जुड़ी समस्याओं का कोई हल नहीं निकला? क्या खेत पर कार्यरत किसानों को बिजली, पानी, खाद, बीज आदि की सुविधायें प्राप्त नहीं हुई? क्या बदलते परिवेश में सामाजिक जीवन मूल्यों में सशोधन, परिवर्द्धन का कोई प्रयास नहीं चल रहा है? क्या जिस भ्रष्टाचार को समाप्त करने की आकाँक्षा की कोख में जन्मी समग्र क्रान्ति जिसने सम्पूर्ण सत्ता प्रतिष्ठान को झकझोरकर, उसे परिवर्तित कर समाज और सत्ता को नई दिशा दी, वह परिवर्तन नहीं है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर निश्चय ही सकारात्मक होगा। राजनीतिक नेतृत्व की प्रतिभा जैसा कि कौटिल्य ने अर्थ-शास्त्र में कहा है– उच्च कुल में जन्म, सत्यशील, अन्तर्विरोधी प्रकृति से रहित, उच्च लक्ष्य रखने वाला, अनुशासन में रुचि रखने वाला एक विवेकी शासक अपनी प्रजा के गरीब और दयनीय तत्वों को भी सुखी और सम्पन्न बना सकता है। माननीय चरणसिंह जी में वे सभी गुण विद्यमान हैं, जो एक कुशल प्रशासक में होने चाहिये। उनकी कल्पना और प्रतिभा पर सन्देह करना व्यर्थ है। लोकतन्त्र में विपक्षियों का कार्य सत्तारुढ़ दल की कमियों को देखना और दिखाना ही है, लेकिन सत्तारुढ़ दल से उन्हें दूर करने की अपेक्षा करना जनता का सहज गुण है, क्योंकि जब हम आगे की ओर बढ़ते हैं तो एक पैर पहले बढ़ता है, दूसरा बाद में! इसी प्रकार जनता सरकार चरणसिंह जैसे व्यक्तित्व को पाकर शनैः-शनैः आगे बढ़ रही है। चौधरी साहब का व्यक्तित्व मानवीय गुणों का एक सम्मिलित आगार है और राष्ट्र को ऐसे व्यक्तित्व का नेता कदाचित् ही मिलता है।

जनतन्त्र के जनक

□ लक्ष्मीशंकर गुप्त

भारतीय क्रान्तिदल की प्रेरणा श्री चौधरी चरणसिंह देश को अधिनायकवाद की ओर तेजी से बढ़ता हुआ देख कर निरन्तर एक मजबूत विपक्ष की कल्पना में डूबे हुए थे। विपक्षी दलों का एकीकरण ही लोकतन्त्र की श्रेष्ठता का मूल मंत्र है। चौधरी साहब सभी दलों को अपना अस्तित्व मिटा कर एक दल में विलीन हो जाने का आग्रह कर रहे थे, अनुनय कर रहे थे।

सुरेन्द्र मोहन और ओमप्रकाश त्यागी अनवरत रूप से पूर्ण निष्ठा से प्रतिपक्ष के सभी दलों के विलयन के लिए प्रयत्न कर रहे थे। भारतीय लोक दल तो पहले से ही पूर्ण समर्पित था, किन्तु संगठन काँग्रेस की नयी-नयी शर्तें नयी पार्टी के गठन को जटिल बना रही थीं। नवम्बर सन् १९७६ के निकट श्री चन्द्रशेखर, जो उस समय जेल में थे, मोरार जी को नेता मानने को तैयार नहीं थे। अतः इस माहौल में सुरेन्द्र मोहन, ओमप्रकाश त्यागी, अटलबिहारी बाजपेयी, चौधरी चरणसिंह, पीलू मोदी और बनारसीदास शून्य में टकरा रहे थे। प्रतिपक्ष के कई नेता राष्ट्रीय हित के लिए 'अहं' को तिलाञ्जलि देकर किन्हीं भी शर्तों पर एक पार्टी बनाने के लिए सक्रिय थे। सुरेन्द्र मोहन, ओमप्रकाश त्यागी, पीलू मोदी इसी दिशा में निरन्तर कार्यरत थे। जार्ज फर्नान्डीज इससे बिल्कुल ही सहमत न थे। चारो ओर अनिश्चितता का वातावरण था—इसी माहौल में १६ तथा १७ दिसम्बर को दिल्ली में एक महत्वपूर्ण बैठक हुई, जिसमें एक मूल सिद्धान्त सामने रखकर निर्णय लिया गया कि एक पार्टी बननी चाहिए और सभी विपक्षी पार्टियों को अपना अस्तित्व विलीन कर देना चाहिए। दिसम्बर की इस बैठक में संगठन काँग्रेस ने एक शर्त रखी कि वह अपनी 'जनरल बाडी' की बैठक बुलाकर अपने नाम और संविधान में परिवर्तन कर लें, क्योंकि उनके साथ ट्रस्टों और सम्पत्ति के मामले भी थे और सुझाव दिया कि उसके बाद अन्य दल उसमें शामिल हो जायें। एक दल के गठन में संगठन काँग्रेस सबसे बड़ी समस्या के रूप में सामने था, पार्टी का गठन संगठन काँग्रेस अपनी शर्तों पर ही करना चाहती थी। संगठन काँग्रेस के नेताओं ने नये दल का नाम 'जनता काँग्रेस' सुझाया। जनसंघ एवं समाजवादी पार्टी के नेता इसके लिए भी तैयार थे। किन्तु चौधरी चरणसिंह 'काँग्रेस' के नाम से सहमत नहीं थे। जयप्रकाश नारायण भी काँग्रेस नाम के खिलाफ थे।

१६ जनवरी सन् १९७७ तक समस्या का कोई हल नहीं निकल सका। जयप्रकाश जी बापू का धर्म निभा रहे थे—द्वार-द्वार अलख जगा रहे थे, किन्तु हर बड़ी पार्टी के सामने अपनी निजी समस्यायें थीं, केवल भारतीय लोकदल के नेता श्री चरणसिंह हृदय से एक सशक्त पार्टी के पक्षधर थे और वे प्रत्येक परिस्थिति में विलय के लिए तैयार थे। १६ जनवरी सन् १९७७ को उन्होंने श्री जयप्रकाश जी के पत्र के उत्तर में लिखा :—

हम अभी तक एक पार्टी बना लेंगे इसका विश्वास जनता को नहीं दिला पा रहे हैं। संगठन कांग्रेस अगर पूरी नेकनीयती से भी विलय चाहे, तो फरवरी तक का समय लग

जायेगा, क्योंकि वह तकनीकी मामलों में फँस गये हैं। इस पत्र में यह भी स्पष्ट लिखा गया था कि आम चुनाव अत्यन्त निकट हैं। अतः पार्टी का निर्माण चुनाव घोषणा से पहले हो जाना ही श्रेयस्कर होगा। चुनाव घोषणा के उपरान्त बनी पार्टी का वह राजनीतिक प्रभाव नहीं होगा, जो अब होता।

इस तरह जब प्रतिपक्ष एक नयी रूपरेखा तैयार करने की खोज में लगा ही था कि १८ जनवरी सन् १९७७ को तत्कालीन प्रधानमन्त्री ने आम चुनावों की घोषणा कर समस्त विरोधी दलों को किंकर्त्तव्यविमूढ़ता में डाल दिया। पीलूमोदी, सुरेन्द्रमोहन, ओमप्रकाश त्यागी, अशोक मेहता, भानुप्रतापसिंह की गतिविधियों में तीव्रता आ गयी। जयप्रकाश जी के विशिष्ट सहयोगी महादेव जोशी तुरन्त ही दिल्ली पहुँचे, किन्तु अनेक राष्ट्रीय नेता अभी भी जेलों में थे—राज नारायणसिंह, मधु लिमये, जार्ज फर्नान्डीज आदि।

इसी समय १९ जनवरी को एक अजीब घटना हुई। मोरार जी देसाई जेल से छूट कर आ चुके थे। पीलू मोदी सूचना मिलते ही मोरार जी से मिलने गये। नमस्कार होते ही देसाई जी ने खुश होते हुए कहा, "चलो अच्छा हुआ चुनाव घोषित हो गया। हम विलय के पाप से बच गये, अब इसे मोर्चा बनाकर लड़ लिया जायेगा।" मोदी यह वाक्य सुनते ही आश्चर्य में पड़ गये। जेल में अनन्त आत्मविश्वास एवं आत्मबल का परिचय देने वाले, कुशल राजनीतिज्ञ मोरार जी देसाई से उन्हें इस प्रकार के निर्णय की स्वप्न में भी आशा न थी। सुरेन्द्र मोहन, ओमप्रकाश त्यागी, पीलू मोदी एवं चरणसिंह एक सुगठित, सशक्त पार्टी का स्वप्न देख रहे थे। सभी सकते में आ गये। मोरार जी भाई के इस वाक्य ने चौधरी चरणसिंह को अत्यन्त उत्तेजित कर दिया। भारतीय लोकदल ने एक स्पष्ट निर्णय लिया, 'मर्जर' उनका एक सूत्री कार्यक्रम था। चौधरी चरणसिंह नवोदित पार्टी के अध्यक्ष रहें या न रहें सभी पार्टियों को अपना अस्तित्व मिटाकर सह-अस्तित्व-मय नवीन पार्टी का निर्माण हर हालत में करना ही चाहिए। राष्ट्र के हितों की रक्षा के लिए यही एक विकल्प था।

रात्रि में मोरार जी देसाई के निवास-स्थान पर सभी विपक्षी दलों के नेताओं की बैठक हुई। मोरार जी भाई अध्यक्षता कर रहे थे। सर्वश्री चरणसिंह, अटल बिहारी बाजपेई, सुरेन्द्र मोहन, अशोक मेहता, पीलू मोदी, नाना जी, एन.जी. गोरे, भानुप्रतापसिंह आदि सभी वरिष्ठ नेता उपस्थित थे। मोरार जी देसाई किसी भी कीमत पर जनता पार्टी बनाने के पक्ष में नहीं थे। वह गुजरात की तरह जनता मोर्चा बनाकर चुनाव लड़ने के पक्ष में थे। इस मीटिंग में काफी गर्मागर्मी का वातावरण रहा। एस० एन० जोशी ने निर्णायक मोर्चा सँभाला और जयप्रकाश जी को सारी परिस्थितियों से अवगत कराया। वह कुछ और सुनने को तैयार नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट आदेश दिया कि यदि जनता पार्टी नहीं बनेगी, तो वह प्रचार कार्य नहीं करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि मैं नयी पार्टी गठित करूँगा और जो चाहेगा उसमें आयेगा, जो नहीं चाहेगा उसे बाध्य नहीं किया जायेगा।

जयप्रकाश जी के कड़े रुख ने सभी को सतर्क कर दिया, अब प्रश्न अध्यक्षता का था। मोरार जी ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि यदि उन्हें अध्यक्ष नहीं बनाया जायेगा, तो वह एक दल के लिए तैयार नही हैं। चौधरी चरणसिंह ने अपने स्वप्नों को कुछ अंशों में पूरा होते देख अपने को अध्यक्ष पद के मार्ग से हटा लिया। जिसे आलोचक 'चेयर सिंह' कहने की धृष्टता करते हैं, उसने एक बार फिर देश के हित के लिए कुर्सी को ठोकर मार दी और मोरार जी की वय के समक्ष अपने को समर्पित कर दिया।

भारतीय लोकदल के नेता अध्यक्ष के मामले को लेकर बहस करना चाहते थे, जिनमें चाँद राम भी थे, किन्तु मोरार जी ने कहा 'लीडरशिप पर कोई बहस नहीं है। चौधरी साहब के मित्र एवं साथी अत्यन्त विक्षुब्ध थे। इसी बीच एक नया प्रस्ताव आया कि चौधरी चरणसिंह दल के महा सचिव बनें। अटल बिहारी बाजपेयी, भानुप्रताप सिंह आदि ने यह प्रस्ताव जब चौधरी साहब के सामने रखा, तो वह क्षुब्ध हो उठे। सचिव बनकर मुंशीगीरी करने से वह साधारण सदस्य बने रहता ही उचित समझते थे। मोरार जी भाई का अहं चरम सीमा पर था। वह जयप्रकाश जी से मिलने जाने को तैयार नहीं थे। उनकी इच्छा थी कि श्री जयप्रकाश जी को दिल्ली आना चाहिये, अतः अन्त में वही हुआ। बीमार

जयप्रकाश जी दिल्ली आये। उन्होंने एक अत्यन्त श्रेष्ठ सुझाव रखा। चौधरी चरणसिंह पार्टी के वरिष्ठ उपाध्यक्ष हों और उत्तर भारत में चुनाव-प्रचार, रण-नीति की पूरी बागडोर उन्हें सौंप दी जाये। उत्तर-भारत के प्रत्याशियों का चयन भी वही करें; मोरार जी दल के अध्यक्ष हों।

बात सुलझ गयी और तनाव दूर हुए। उत्तर भारत में चुनाव संचालन का गुरुतर भार पूरी तरह चरणसिंह पर छोड़ देने का निर्णय लिया गया। इस प्रकार २३ जनवरी सन् १९७७ को मोरार जी देसाई ने ५ डुप्ले रोड में, अपने घर पर आयोजित एक संवाददाता सम्मेलन में शक्तिपुंज श्री जयप्रकाश नारायण जी की उपस्थिति में जनता पार्टी के गठन की घोषणा की और धरती पर एक नये अंकुर का जन्म हुआ।

इस सारी कशमकश में चौधरी साहब की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उनकी दूरदर्शिता, त्याग एवं तपस्या ने जनता को वास्तविक अर्थों में जनता शासन सौंपा है। हम अधिनायकवाद के पिंजरे से बाहर निकलकर स्वच्छन्द पंछी से मनचाही उड़ाने भरने के लिए स्वतन्त्र हो चुके हैं। किन्तु कठिन कर्त्तव्यों की चुनौती हमारे समक्ष है। तूफान से कश्ती का बाहर आ जाना ही पर्याप्त नहीं है, मंजिल तक पहुँचना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। देश की एक पीढ़ी ने देश को दिशा दी है, दूसरी गति दे तभी देश का उत्थान सम्भव हो सकेगा।

माननीय चौधरी चरणसिंह जो आज हमारे देश के गृहमंत्री हैं, इस आदर्श क्रान्ति की प्रेरणा हैं। उनकी कल्पना को सम्पूर्ण युवा-वर्ग का सम्बल आवश्यक है। उनकी नीतियाँ सर्वहारा वर्ग को उच्चतम स्थान पर प्रतिष्ठित करने में सक्षम हैं।

नई पीढ़ी बनाम युवा-वर्ग पूर्ण आस्था एवं विश्वास से चौधरी साहब की नीतियों को आगे बढ़ाने के लिए संकल्प बद्ध है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

●

अपने सुखों की, आनन्दों की, अपने यश की, प्रतिष्ठा की, यहाँ तक कि अपने प्राणों की भी आहुति चढ़ा दो और मानव-आत्माओं का ऐसा सेतु बाँध दो, जिस पर होकर ये करोड़ों नर-नारी भव सागर को पार कर जायें। 'सत्य' की समस्त कठिनाइयों को एकत्र करो। यह चिन्ता मत करो कि तुम किस पताका के नीचे चल रहे हो। यह भी चिन्ता मत करो कि तुम्हारा वर्ण क्या है—लाल, हरा या नीला। बल्कि सब वर्णों को मिला दो और स्नेह के प्रतीक श्वेत रंग का प्रखर तेज उत्पन्न करो; हम केवल कर्म करें। परिणाम अपनी चिन्ता स्वयं करेंगे।

—स्वामी विवेकानन्द

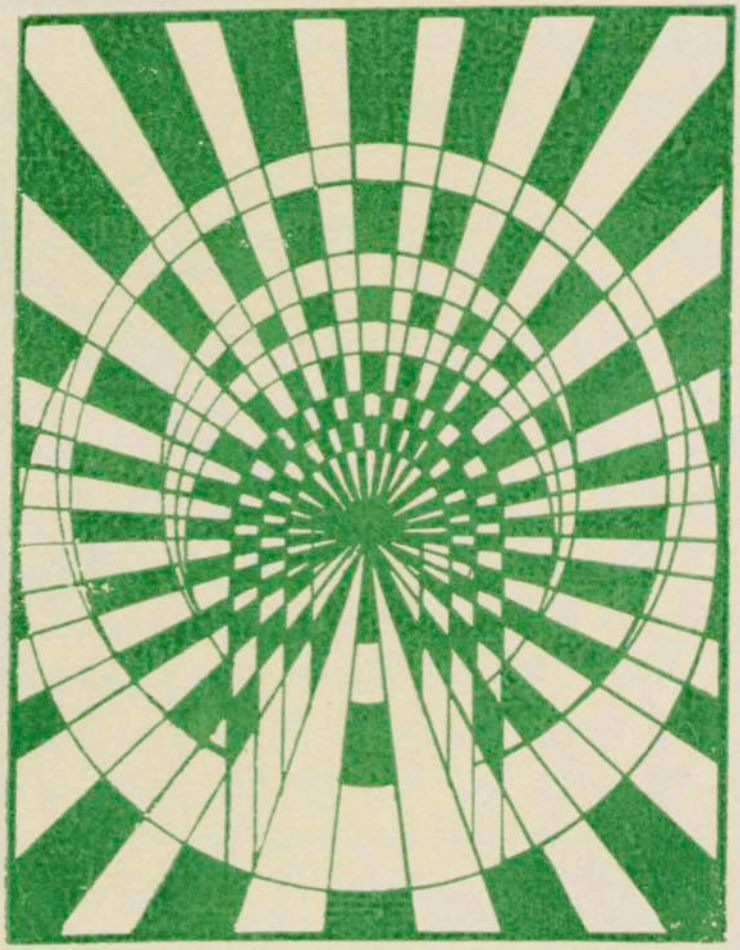

विशिष्ट

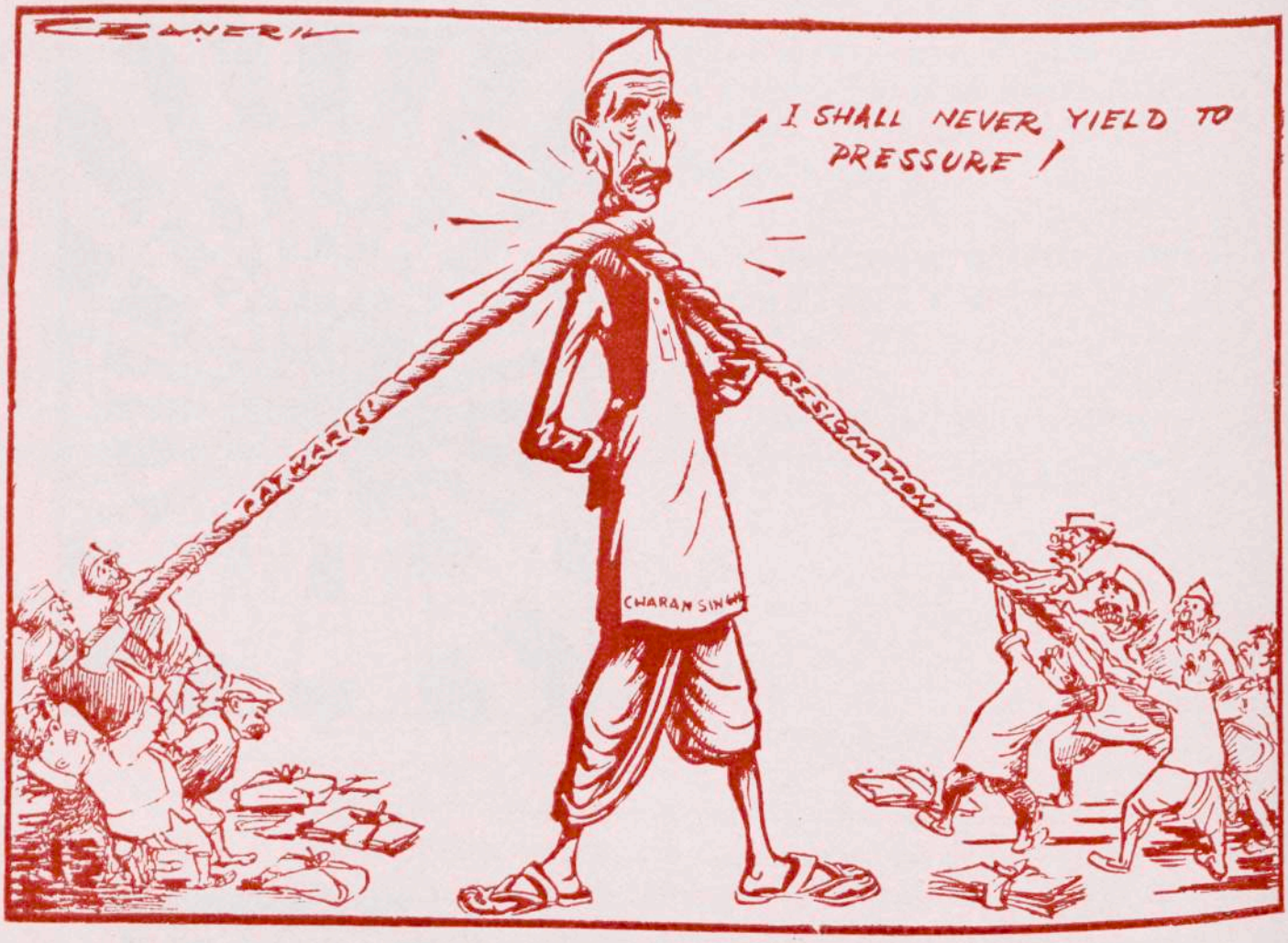
I SHALL NEVER YIELD TO PRESSURE !
CHARAN SINGH

महान् मानववादी

□ राज नारायण
स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मन्त्री
भारत सरकार

चौधरी चरणसिंह जी ने सरदार पटेल का दिल, महात्मा गाँधी के तरीके और डाक्टर राममनोहर लोहिया की तर्क-शक्ति पायी है। एक गरीब परिवार में पैदा होने के कारण वे गरीबों की हालत से अच्छी तरह परिचित हैं। वे देहात के जीवन के ज्ञाता हैं—सादा-जीवन और उच्च-विचार के पोषक हैं। उनकी मान्यता है कि 'सिद्धान्तों से समझौता करके राजनीति चलाना छल-छिद्र की स्थिति पैदा करती है।' चौधरी चरणसिंह राजनीति और धर्म की समीपता चाहते हैं। जाति—वर्ण के डाँड़मेड़ों में समाज को बाँटना वे समाज के लिए घातक समझते हैं, इसलिए वे जाति-तोड़ो सम्मेलन के प्रबल पक्षधर हैं।

चौधरी साहब दार्शनिक मानववादी होने के साथ-साथ एक कुशल प्रशासक भी हैं। घर-मंत्री के रूप में, खेत-मत्री के रूप में, मुख्य मन्त्री के रूप में, स्वायत्त शासन मन्त्री के रूप में, राजस्व मन्त्री के रूप में उन्होंने अपनी कार्य-कुशलता के अनुकरणीय उदाहरण दिये हैं। उनके व्यक्तित्व में ममत्व और समत्व का बहुत ही सुन्दर योग पाया जाता है। बनावट और नकली सभ्यता के वे सख्त विरोधी हैं। यही कारण है कि जिन लोगों का वैचारिक सम्बन्ध चौधरी साहब से हो जाता है, वह पारिवारिक सम्बन्धों से भी गहरा होकर अटूट की श्रेणी में परिवर्तित हो जाता है। कभी-कभी उनकी इसी सरलता और भोलेपन के कारण कुटिल-जन चौधरी साहब का बेजा फायदा भी उठाते हैं और लाभ उठाने के बाद स्वयम् लज्जित होकर उनका साथ छोड़ देते हैं। चौधरी साहब इस रोग से बचने की कोशिश तो करते हैं, किन्तु उस पर कभी-कभी हावी नहीं हो पाते।

चौधरी साहब ज्योतिष शास्त्र के भी पण्डित हैं। नक्षत्रों और ग्रहों का उन्हें अच्छा ज्ञान है। अपने अतीत की अनुभूति और वर्तमान का ज्ञान रखते हुए वे भविष्य का सपना देखते हैं। यही कारण है कि वे आज के सामाजिक और राजनीतिक वातावरण से खिन्न रहते हैं। वे चाहते हैं कि समतावादी समाज को बनाने के लिए देश के अस्सी फीसदी गाँव के लोग, जो अकिंचनता और अशिक्षा के गर्त में पड़े हैं, उनके हाथ में सत्ता आ जाये। 'जाके पाँव न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई' की कहावत को ठीक से समझते हुए चौधरी साहब इस बात को मानते हैं कि गरीब—गरीब का प्रतिनिधि और छोटे-छोटे नोटों के सहारे ही देश से गरीबी मिटायी जा सकती है; गाँव और शहर का अन्तर मिटाया जा सकता है; गरीब और अमीर का फर्क दूर किया जा सकता है। कृषि-जन्य पदार्थ और कल-कारखानों से उत्पन्न पदार्थ की कीमतों में न्याययुक्त सन्तुलन लाया जा सकता है। गेहूँ यदि चार पैसे किलो बिके, तो कपड़ा भी चार पैसा मीटर बिकना चाहिए। किसानों को सस्ती खाद, पानी, बीज की व्यवस्था होनी चाहिए। मरीजों को सस्ती दवा कैसे मिले, इस तरह के सवालों पर चौधरी साहब बराबर चिन्तित रहते हैं। इसीलिए गाँधी जी द्वारा बतायी गयी राह पर चलकर चौधरी साहब बेकारों को काम देने तथा अशिक्षितों को शिक्षित करने, ऊँच-नीच तथा छुआछूत का भेदभाव मिटाने के लिए सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। चौधरी साहब जब वकालत

करते थे, तब से ही हरिजन कही जाने वाली माँ के पेट से पैदा होने वाले बालक के हाथ का बनाया खाना खाते थे।

चौधरी साहब सही अर्थों में मानव के पुजारी हैं, चाहे वह हिन्दू हो, सिख हो या ईसाई। वे केवल 'मानवतावादी' नहीं हैं जैसे जवाहरलाल नेहरू थे। जवाहरलाल जी नेहरू मानवतावादी तो थे, किन्तु मानव-प्रेमी नहीं; उनकी नाक के नीचे मानव भूख से तड़प-तड़प कर मरता हो, तो उसकी कुछ भी परवाह नहीं कर सकते थे। मानववादी, मानव-प्रेमी मानवतावादी होगा, किन्तु मानवतावादी मानव-प्रेमी नहीं भी हो सकता—जैसे जवाहरलाल नेहरू थे। वह निर्गुण सिद्धान्तों में विश्वास करते थे, जैसे समाजवाद, विश्व-बन्धुत्व, अन्तर्राष्ट्रीयता किन्तु पण्डित नेहरू के समाजवाद में आर्थिक-विषमता बराबर बढ़ती गयी, गरीबी और बेकारी दिन-दूनी रात-चौगुनी होती गयी। उनके प्रधान-मन्त्रित्व काल में देश की सीमा घटी, तिब्बत चीन के हाथों परतन्त्र हुआ, लद्दाख का इलाका गया, हमारा कैलास और मान-सरोवर हमारे हाथ से चले गये। मानव-प्रेमी हमेशा मानव से प्रेम करेगा, घृणा नहीं। चीथड़ों में लिपटा अकिंचन मानव देखकर चौधरी साहब की आँखों में आँसू आ जाते हैं, किन्तु नेहरू जी के पास फटा-कटा-गन्दा कपड़ा पहनने वाला भारत का गरीबजन फटक नहीं सकता था। नेहरू जी गरीबों को धनिकों के लिए कामधेनु समझते थे, इसलिए उन्होंने 'धन-पशुओं' को बढ़ावा दिया। उनके आर्थिक ढाँचे में कंगाली और करोड़पन्थ दोनों बढ़े। नेहरू जी ने करोड़पतियों से नोट और गरीबों से वोट लेने की कूटनीति चलायी, किन्तु चौधरी साहब का बराबर कहना है कि गरीब अपने छोटे नोट की बदौलत करोड़पन्थ का खात्मा कर सकता है। जो करोड़पतियों के नोट के सहारे राजनीति चलायेगा, वह कभी भी करोड़पतियों के चंगुल से देश को नहीं बचा सकता। नेहरू जी की आर्थिक नीति थी देश को पूँजीवाद और साम्यवाद के ढाँचे में ढालना। अमरीका, रूस और इंगलैण्ड की नकल करना जिसका फल यह हुआ कि भारत दिनोंदिन गरीब होता चला गया और खपत की आधुनिकता की दौड़ में उन राष्ट्रों के सामने नहीं खड़ा हो सका। फलतः बेकारी बढ़ती गयी। राष्ट्र की इस दयनीय स्थिति से खिन्न होकर उस समय राष्ट्रकवि दिनकर ने चेतावनी दी थी—

'बेलगाम यदि रहा भोग
निश्चय संहार मचेगा।'

नेहरू-युग भोगवादी-युग था; चौधरी साहब उसको कर्मवादी-युग में परिवर्त्तित कर गरीबों के हाथ में सत्ता देना चाहते थे, इसलिए उन्हें नेहरूवादियों के कोप का भाजन बनना पड़ रहा था। किन्तु चौधरी साहब तो महाकवि जयशंकर प्रसाद के इन वचनों से अनुप्राणित हैं कि :—

"अपने में भर सब कुछ
कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त-स्वार्थ भीषण है
सबका नाश करेगा।"

एक व्यक्ति यदि अपने हाथ में सारी सत्ता रखेगा या रखने का प्रयत्न करेगा, तो वह समाज का नाश करके छोड़ेगा, यही अधिनायकवाद, तानाशाही है। चौधरी चरण सिंह जी अधिनायकवाद के सर्वथा विरुद्ध हैं। इसलिए वह राजनीतिक और आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना चाहते हैं।

जनतंत्र के पाँच अंग होते हैं—व्यक्ति, पार्टी, सरकार, समाज और राष्ट्र। इसमें जहाँ व्यक्ति पार्टी का रूप लेगा या पार्टी सरकार का रूप लेगी, वहीं अधिनायकशाही व्यवस्था आयेगी। इसलिए इस पद्धति का चौधरी साहब खुलकर विरोध करते हैं। उनका कहना है कि व्यक्ति की गरिमा और उसकी मर्यादा की रक्षा बराबर होनी चाहिये। असीमित-अमर्यादित-शक्ति का केन्द्रीयकरण पार्टी में होना चाहिए न कि सरकार में। कभी-कभी सरकारें भी असीमित शक्ति लेने का प्रयत्न करती हैं और सरकार पर आने वाले खतरे को राष्ट्र पर खतरा बताकर सारी शक्ति अपने हाथ में ले लेती हैं। कोई भी जनतन्त्र का प्रेमी इस मनोवृत्ति का विरोधी होगा। इसलिए कभी-कभी भारतवर्ष में तानाशाही शक्तियाँ जाति या सम्प्रदायगत कटुता पैदाकर, बढ़ाकर और फैलाकर अपनी अधिनायकवादी मनोवृत्ति को साकार स्वरूप देने का प्रयत्न करती हैं। यह सही है कि समाज में जो व्यक्ति जितना पिछड़ा है, उसको उतनी ही अधिक सहायता की जरूरत है। इसलिए चौधरी साहब ने भारतीय लोकदल के नीति-वक्तव्य में परिगणित जनजातियों (शेड्यूल ट्राइब्स) को सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी कोटा, परमिट,